ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जनवरी २०२०

Date of Printing = 05-01-20
प्रकाशन दिनांक = 05-01-20

वर्ष ४६ : अङ्क ३
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : पौष-माघ २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : **धर्मपाल आर्य**
सह सम्पादक : **ओमप्रकाश शास्त्री**
व्यवस्थापक : **विवेक गुप्ता**

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति १५.०० रु०
वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- कर्त्ता बिना नहीं हो काम २
- वेदोपदेश ३
- नागरिकता कानून और राजनीति ४
- मन्त्रार्थ में ऋषि व देवता से....... ७
- अशुद्ध गणित से छप रहे वर्तमान.... ११
- अन्त:करण (चित्त) का सदुपयोग १२
- क्या संविधान ही सबकुछ है? १६
- आर्यसमाज नया बांस के इतिहास...... १९
- दलितोद्धार की आड़ में (२) २२

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण — ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) — ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

कर्त्ता बिना नहीं हो काम

(प्रज्ज्वल आर्य)

जगत की रचना देख समझकर, रचनाकार की हो पहचान।
इतना अचरज भरा जगत में, कर्ता बिना नही हो काम॥ (टेक)

धरती सूरज तारे चंदा, अनुशासन में चलते हैं,
सूरज की अग्नि के शोले, किस ईंधन से जलते हैं।
ठीक समय पर सूरज चंदा, ढलते और निकलते हैं,
किसने इन्हें नियम से बांधा, पलभर भी ना टलते हैं।
है कोई संचालक सच में, जो रखता है इनका ध्यान,
इतना अचरज भरा जगत में, कर्ता बिना नही हो काम॥१॥

बेर के फल की रक्षा खातिर, किसने शूल लगाया है,
नन्हे से एक बीज के अंदर, बरगद बड़ा छुपाया है।
मीठा नीर भरा गन्ने में, कड़वा नीम बनाया है,
आलू अदरक मूली गाजर, भू में इन्हें दबाया है।
धूल कणों में फसल उगा दी, चना बाजरा सरसो धान,
इतना अचरज भरा जगत में, कर्ता बिना नही हो काम॥२॥

मछली के बच्चे को किसने, तैराकी सिखलाई है,
बल्ब जले जिससे जुगनू का वो, विद्युत कहाँ से आई है।
मोरपंख में रंग भरे और, तितली खूब सजाई है,
दीमक की मेहनत को देखो, पेड़ पे धूल चढ़ाई है।
उल्लू, चमगादड़ के नैन को, दिवस की ना होती पहचान,
इतना अचरज भरा जगत में, कर्ता बिना नही हो काम॥३॥

मानव के चोले की कर दी, किसने गजब सिलाई है,
शक्ल और अंगुली की रेखा, एक जैसी ना पाई है।
नर तन जैसी रचना नर पे, हरगिज ना बन पाई है,
ईश्वर की महिमा **'प्रज्ज्वल'** ने, कविता से समझाई है।
ईश्वर को जो फिर ना माने, उसको मूरख लेना जान,
इतना अचरज भरा जगत में, कर्ता बिना नही हो काम॥४॥

❑❑

ओ३म्

~~~~~~

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– मन, वचन, कर्म से सत्य का आचरण करना महान व्रत है। और ईश्वर कृपा से सत्याचरण करने में समर्थ होता है तथा सत्याचरण का फल ही सुख तथा इससे विपरीत आचरण ही दुःख देता है।

वामदेवः ऋषिः अग्निः = ईश्वरः देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

अथ यत्सत्याचरणेन सुखं भवेत्तदुपदिश्यते।।

अब जो सत्याचरण से सुख होता है, उसका उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् –अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं। यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि।। (यजु० २। २८)

पदार्थः–(अग्ने) सत्यस्वरूपेश्वर! **(व्रतपते)** व्रतं नियतं यत् न्याय्यं कर्म तत्पतिस्तत् सम्बुद्धौ **(व्रतम्)** सत्यलक्षणं **(अचारिषम्)** चरितवान् **(तत्)** पूर्वोक्तम् **(अशकम्)** शक्तवान् **(तत्)** मयाचरितुं योग्यम् **(मे)** मम् **(अराधि)** संसाधितम् **(इदम्)** प्रत्यक्षमाचरितुम् **(अहम्)** मनुष्यः **(यः)** यादृश कर्मकारी **(एव)** निश्चयार्थे **(अस्मि)** वर्ते **(सः)** तादृशकर्मभोजी **(अस्मि)** भवामि।

अयं मन्त्रः शं. १/६/३/२२-२३ व्याख्यातः।।

सपदार्थान्वयः हे **(व्रतपते)** व्रतं नियतं यन्न्याय्यं **(कर्म)** तत्पतिस्तत्संबुद्धौ **(अग्ने)** सत्यस्वरूपेश्वर। भवता कृपया मदर्थं यत् यद् **(इदम्)** प्रत्यक्षमाचरितुं व्रतं सत्यलक्षणम् **(अराधि)** संसाधितम **(तत्)** पूर्वोक्तम् **(अहम्)** मनुष्यः **(अशकम्)** शक्तवान् **(अचारिषम्)** चरित्रवान् यत् मया **(अराधि)** संसाधितम् **(तत्)** चरितुम् योग्यमेव **(अहं भुञ्जे)** योऽहं यादृशं कर्म कार्यस्मि **(तत्)** सोऽहं तादृशफलभोग्यः तादृश फलभोजी **(अस्मि)** भवामि।

भाषार्थः हे **(व्रतपते)** व्रत अर्थात् न्यायोचित कर्मो के पति **(अग्ने)** सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने कृपा करके मेरे लिए जो **(इदम्)** यह प्रत्यक्ष रूप से आचरणीय **(व्रतम्)** सत्य लक्षणयुक्त व्रत **(अराधि)** बनाया है **(तत्)** वह पूर्वोक्त व्रत मेरे द्वारा आचरण में लाने याग्य है, उसे **(अहम्)** मैं मनुष्य **(अशकम्)** कर सका **(अचारिषम्)** और आचरण में लाया। जो मैंने व्रत सिद्ध किया **(तत्)** उस आचरण करने योग्य व्रत का **(एव)** ही मैं भोग करता हूँ। और जो जैसे कर्म करने वाला मैं **(अस्मि)** हूँ **(सोऽहम्)** वह मैं वैसा ही कर्मो का भोग करने वाला भी **(अस्मि)** हूँ।

भावार्थः मनुष्येणेदम् निश्चेतव्यं मयेदानीं यादृशं कर्म क्रियते तादृशमेव ईश्वरव्यवस्थया फलं भुज्यते भोक्ष्यते च।

नहि कश्चिदपि जीवः स्वकर्म विरुद्धं फलं अधिकं न्यूनं वा प्राप्तुं शक्नोति।

तस्मात् सुखभोगाय धर्माष्येव कर्माणि कार्याणि, यतो नैव कदाचिद् दुःखानि स्युरति।।

भावार्थ मनुष्य को यह निश्चय करना चाहिए कि मैंने इस समय जैसा कर्म किया है, वैसा ही ईश्वर की व्यवस्था से फल मिल रहा है और मिलेगा।

कोई भी जीव अपने कर्म से विरुद्ध अधिक वा न्यून फल नहीं प्राप्त कर सकता। इसीलिए सुखयुक्त भोगों की प्राप्ति के लिए धर्मानुसार ही कर्म करें, जिससे कभी दुःख प्राप्त न हो।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता–स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)
~~~~~~

नागरिकता कानून और राजनीति

(धर्मपाल आर्य)

केन्द्र सरकार ने ९ दिसम्बर (सोमवार) को लोकसभा में नागरिक संशोधन बिल प्रस्तुत किया जिसे ८० के मुकाबले ३११ मतों से पारित करा लिया गया। उसके बाद उक्त विधेयक राज्य सभा में भी पारित हो गया और महामहिम राष्ट्रपति जी के हस्ताक्षर के बाद उक्त विधेयक कानून बन गया। संक्षेप में उपरोक्त कानून के अनुसार पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान में जो भी प्रताड़ित अल्पसंख्यक हैं, भारत उन्हें अपने देश की नागरिकता प्रदान करेगा। सरकार ने प्रताड़ित अल्पसंख्यकों की सूची में हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध, पारसी और ईसाइयों की गणना की है। जैसा कि हमारे राजनीतिज्ञों का स्वभाव है कि वे अपने राजनीतिक हितों को ध्यान में रखते हुए ही सरकार के किसी कार्य का समर्थन अथवा विरोध करते हैं फिर चाहे वो मुद्दा जम्मू-कश्मीर से ३७० व ३५ए को हटाने का हो, चाहे ट्रिपल तलाक का मुद्दा हो, अयोध्या विवाद हो अथवा नागरिक संशोधन विधेयक हो। इस विधेयक ने राष्ट्रपति जी के हस्ताक्षर के बाद जैसे ही कानून का रूप लिया, उसके तुरन्त बाद उपरोक्त बिल (कानून) का राजनीतिक विरोध शुरू हो गया। कई प्रदेशों (विशेषकर गैर भाजपा शासित) ने उपरोक्त कानून को अपने-अपने राज्यों में लागू करने से इन्कार किया है।

इस कानून का विरोध इतना उग्र और हिंसक हो रहा है जिससे यह तय करना कठिन हो गया है कि यह हिंसक विरोध सरकार के विरुद्ध है अथवा उस बिल के विरुद्ध है। मैं यह समझता हूँ कि विरोध चाहे सरकार का हो, चाहे विधेयक का हो, विरोध की शैली कभी भी हिंसक नहीं होनी चाहिए। जो भी राजनीतिक दल हिंसक गतिविधियों को हवा देते हैं, वे कहीं न कहीं देश की एकता, अखण्डता को चुनौती दे रहे हैं। सरकार जो भी विधेयक लाती है और उसे कानूनी रूप प्रदान करती है, उसके पक्ष में, विपक्ष में चर्चा की, परिचर्चा की संभावना से तथा उस पर व्यापक बहस से इनकार नहीं किया जा सकता। उस चर्चा, परिचर्चा और बहस के बाद उस (विधेयक) के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय होने के बाद भी समर्थन व विरोध का विकल्प हमेशा खुला रहता है। कई महानुभाव मुझसे प्रश्न पूछ रहे थे कि सरकार के इस विधेयक पर आपकी क्या राय है? आपके अनुसार क्या यह विधेयक राष्ट्रहित में है? मैं इन प्रश्नों को सुनकर कुछ देर तक जब मौन रहा, तो वे पुनः बोले प्रधान जी आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तो मैंने उन्हें कहा-

मान्यवर!! आपका प्रश्न पूरा नहीं है। इन प्रश्नों के साथ आपको यह भी पूछना चाहिए कि इस विधेयक के विरोध में जो हिंसा हो रही है क्या वह होनी चाहिए? क्या हिंसा वस्तुतः राष्ट्रहित में है? आपको यह भी पूछना चाहिए था कि उक्त विधेयक के विरोध में हिंसा को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जो शह दे रहे हैं क्या वो दी जाने वाली शह राष्ट्रहित में है अथवा जो राजनीतिक दल इस कार्य को कर रहे हैं क्या वस्तुतः वो राष्ट्रहित में है? सरकार के किसी कार्य का विरोध करने का क्या यही तरीका होना चाहिए कि यातायात को बाधित कर दो, बस अड्डों और रेलवे स्टेशनों को आग लगा दो, सरकारी कामकाजी इमारतों तथा सार्वजनिक संसाधनों और सम्पत्तियों को फूंक दो, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को अनश्चित काल के लिए बन्द करवा दो और बस, रेल, हवाई सेवाओं को बन्द करा दो, क्या उपरोक्त गतिविधियाँ सरकार के गलत कार्यों का विरोध करने की लोकतान्त्रिक विधियाँ हैं?

मैंने आगे उन महोदय से पूछा कि आपके अनुसार देशद्रोह किसको कहा जाता है? उन्होंने कहा कि वो हर कार्य अथवा गतिविधि देशद्रोह की श्रेणी में आते हैं,

जिनसे देश का सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक ताना-बाना खण्डित होता हो अथवा उसकी एकता, अखण्डता के लिए संकट पैदा करता हो। मैंने तुरन्त उन्हें पूछा कि अब आप मुझे यह भी बता दीजिए कि सरकार के कार्य को लेकर जिस प्रकार विरोध किया जा रहा है वो राष्ट्रहित में है अथवा राष्ट्रदोह? इस प्रश्न पर उन्होंने मौन धारण कर लिया।

जहां तक मेरा अपना मानना है, अभी यह विधेयक मेरे लिए व्यापक समीक्षा का विषय है पुनरपि मैं इतना तो फिर भी कह ही सकता हूँ कि उपरोक्त विधेयक देश के विरोध में तो कम से कम नहीं ही है लेकिन उसके विरुद्ध जो हिंसा, जो नारेबाजी, जो प्रदर्शन, जो आगजनी और जो गतिविधियाँ हो रही हैं वे राष्ट्रहित में नहीं अपितु उसके अहित में हैं। वेद का तो आदेश है-

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते।।

अर्थात् संसार के लोगो! तुम राष्ट्रहित के कार्यों में, सत्य के कार्यों में और समाज हित के कार्यों में मिलकर चलो, संगठित होकर सत्य व राष्ट्रहित के कार्यों को करते हुए तुम सभी उस सुख-भाग को प्राप्त करो जिस सुखभाग को तुम्हारे पूर्वजों ने प्राप्त किया था। सरकार के लिए राष्ट्र सर्वोपरि होता है इस बात में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। सरकार की नीतियों से असहमति होना स्वाभाविक है लेकिन असहमति को हिंसक तरीके से व्यक्त करना सीधे-सीधे देश के साथ विश्वासघात है। सरकार के कार्यों के प्रति विरोध जताने का हिंसा का तरीका कहीं न कहीं देश के दुश्मनों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शह देता है। जो राजनीतिक दल इस प्रकार के विरोध को हवा दे रहे हैं वे कहीं न कहीं देश के सामाजिक ताने-बाने को मिटाने का काम कर रहे हैं।

मैंने प्रश्न करने वाले महानुभाव से प्रति प्रश्न करते हुए पूछा "क्या आपके अनुसार सरकार कानून किसी जाति विशेष को लक्ष्य करके बनाती है? यदि नहीं, तो क्या कारण है कि सरकार द्वारा लाए कानून का विरोध करने वाले एक वर्ण विशेष (मुसलमान) के ही लोग अधिक क्यों है? यदि हाँ है तो फिर सरकार के उक्त कानून के खिलाफ दायर की गई याचिका को सुप्रीम कोर्ट ने खारिज क्यों कर दिया? प्रायः हमारे राष्ट्र में सरकारी कानून के विरुद्ध अथवा सरकार के किसी कार्य का जब विरोध करना होता है तो उपद्रवियों के उपद्रव और उनकी हिंसक गतिविधियों का निशाना सार्वजनिक संसाधन और सार्वजनिक सम्पत्तियाँ होती हैं। क्या लोकतान्त्रिक देश में लोकतान्त्रित तरीके से चुनी गई लोकतान्त्रिक सरकार के अलोकतान्त्रिक कार्यों का विरोध लोकतान्त्रिक तरीके को छोड़कर अलोकतान्त्रिक तरीके से होना चाहिए?

मैं १० दिसम्बर के जागरण समाचार पत्र में इस्लामिक मामलों के विशेषज्ञ रमिश सिद्दीकी द्वारा लिखित "अज्ञानता से उपजा हिंसक" नामक लेख को पढ़ रहा था। उनके अनुसार "नागरिकता कानून का किसी भी भारतीय नागरिक से कोई वास्ता नहीं और यह कानून तो उत्पीड़न के कारण भारत आए लोगों को नागरिकता देने का है, न कि किसी की नागरिकता लेने का, फिर भी हिंसा का सहारा लिया जा रहा है; बांग्लादेश और पाकिस्तान में उत्पीड़न के कारण अल्पसंख्यक कम होते जा रहे हैं। इस्लामिक राष्ट्रों (विशेषकर पाकिस्तान व बांग्लादेश) से वहाँ के अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न की खबरें प्रतिदिन आती रही हैं, ऐसी स्थिति में या तो वे सब मर जाएं, अपना धर्म परिवर्तन कर लें या भारत की नागरिकता ले लें। उत्पीड़ितों को भारत की नागरिकता प्रदान करने के लिए ही उपरोक्त कानून लाया गया है।'' आगे रमिश सिद्दीकी लिखते हैं - "आम मुसलमानों में यही भरा जा रहा है कि यह कानून उनके खिलाफ है।" इस विषय पर प्रतिदिन राजनीतिक विश्लेषकों द्वारा एवं संविधान विशेषज्ञों द्वारा बड़े विद्वत्तापूर्ण विचार दिए गये हैं जो कि इस कानून को लेकर पैदा हुई गलतफहमियों को दूर करने के लिए काफी हैं। परन्तु कानून के तथाकथित विरोध में जिस तरह की हिंसा की जा रही है; जिस प्रकार उपद्रव फैलाया जा रहा है, जिस प्रकार जगह-२ आगजनी की जा रही है, जिस प्रकार एक वर्ग विशेष द्वारा अराजकता

फैलाने की कोशिश की जा रही है ये सब कहाँ तक ठीक है? क्या ये सारी गतिविधियाँ लोकतान्त्रिक हैं? क्या यह सब कुछ राष्ट्रहित में है? पाकिस्तान मूल के कनाडाई लेखक और इस्लाम के जानकार तारक फतेह कहते हैं कि दशकों से बांग्लादेश और पाकिस्तान में नारकीय यातना सहने वाले अल्पसंख्यकों को यदि भारत की नागरिकता दी जाती है तो इसमें गलत क्या है?

नागरिकता संशोधन कानून को लेकर राजनीतिज्ञों ने एक वर्ग विशेष में भय और आशंका उत्पन्न करके अपनी अदूरदर्शिता और अवसरवादिता को ही प्रदर्शित किया है। इस देश की राजनीति में इस प्रकार की गिरावट मुझे भर्तृहरि की उस पंक्ति को याद दिलाती है,जिसमें उन्होंने लिखा है–

"वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा" अर्थात् राजनीति वेश्या की भाँति नाना प्रकार के रूपों वाली है। आचार्य भर्तृहरि की उक्त पंक्ति वर्तमान राजनीति पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती दिखाई दे रही है। ये राजनीति कभी तो हिंसा की भाषा बोलती है, कभी ये राजनीति दयालुता की भाषा बोलती है, कभी यह राजनीति सत्य को बढ़ाने वाली होती है, कभी यह राजनीति धर्मनिरपेक्षता की पैरोकार बन जाती है, कभी यह राजनीति तथाकथित अल्पसंख्यकों की हमदर्द बन जाती है, कभी यह राजनीति कठोरता की भाषा बोलने वाली बन जाती है, कभी यह राजनीति मृदुभाषिणी बन जाती है, कभी यह राजनीति आवश्यकता से अधिक उदारवादिनी और कभी आवश्यकता से अधिक अनदारवादिनी बन जाती है और कभी यह राजनीति अवसरवादिता को बढ़ावा देने वाली बन जाती है। इस प्रकार की राजनीति के सांचे में जब हमारे राजनीतिक दल बदल जाते हैं तो उसकी इसी प्रकार के आगजनी, तोड़फोड़ हिंसक कार्यों के रूप में परिणति होती है। इस प्रकार की राजनीति का और राजनीतिज्ञों का देश के संघीय ढाँचे पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका प्रबुद्ध पाठकगण सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

वेद में जिस अखण्ड और स्थिर राष्ट्र की कल्पना की है, कम से कम मेरे विचार से उपरोक्त राजनीति और राजनीतिज्ञों से उसके साकार होने की दूर-दूर तक भी कोई संभावना नहीं है। वेद में कहा है–

"वृषसेनो राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा"

अर्थात् हे प्रजावर्ग! तुम शक्तिशाली राजा, शक्तिशाली सेनापति, शक्तिशाली मन्त्री वर्ग से युक्त हो इसलिए तुम्हें उचित है कि तुम शक्तिशाली राजा के शक्तिशाली सेनापति के और शक्तिशाली सेना व मन्त्री के हाथों में राष्ट्र को सौंप दो। इसी क्रम में अथर्ववेद में भी अनेक मन्त्रों में राजा को आदेश दिया गया है–

"ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणि हि
शत्रुञ्छत्रूयतोऽधरान्मादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः
कल्पतामिह।।

अर्थात् हे राजन्! इस राष्ट्र को स्थिर करते हुए तथा अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित हुए बिना शत्रुओं को तथा शत्रु की भांति राष्ट्र के विरुद्ध आचरण करने वालों को नष्ट कर डाल। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने भी वेद-सम्मत राजनीति ही राष्ट्र की आवश्यकता बताई है। आर्य समाज के तृतीय नियम में ऋषिवर लिखते हैं –

"सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।" इसमें ऋषिवर ने सामान्यतः सबसे प्रीतिपूर्वक, उसके बाद फिर धर्मानुसार और फिर जो जैसा है उसके साथ वैसा ही व्यवहार करने का निर्देश किया है। काश! इस देश की राजनीति और राजनेता महर्षि के व्यवहार के कूटनीतिक सिद्धान्त को समझ सकें तो व्यवस्था में सुधार हो जाए।

❑❑

''दयानन्द सन्देश'' के समस्त प्रबुद्ध पाठकों को पाश्चात्य नववर्ष २०२० की हार्दिक बधाई और मंगलकामनाएं।

आओ, हम सब संकल्प लें कि किसी भी कीमत पर हमारे लिए राष्टहित सर्वोपरि होगा और हम अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयास और पुरुषार्थ करेंगे।

दिनेश कुमार शास्त्री, ***व्यवस्थापक***

मन्त्रार्थ में ऋषि व देवता से अर्थनिर्धारण

(उत्तरा नेरूर्कर, मो. ०९८४५०५८३१०)

वेदमन्त्रों के अर्थ में उस पर दिए ऋषि व देवता का विशेष महत्त्व है, इसे आपने मेरे लेखों द्वारा अब तक सम्भवतः जान लिया होगा। अब इस तथ्य को जब तक दृष्टान्त द्वारा समझा न जाए तब तक उसको मन में बैठाना सरल नहीं है। वैसे तो मैं कोई ऋषिका नहीं, तथापि यहां मेरी ओर से इस दिशा में एक छोटा सा प्रयास है। आशा है इससे प्रेरित होकर अन्य वेदाध्येता इस विषय पर और शोध करेंगे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने एक मन्त्र अपने अनेकों ग्रन्थों में उद्धृत करके प्रसिद्ध कर दिया। वह है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

इस मन्त्र की विशेष बात यह है कि वेदों में यह अनेक बार आया है – कुल मिलाकर पांच बार! इससे ज्ञात होता है कि यह मन्त्र कितना महत्त्वपूर्ण है। यहाँ तक कि इस मन्त्र से सम्बद्ध तीन और मन्त्र– **"यः प्राणतो निमिषतो, यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, य आत्मदा बलदा"** – जो महर्षि ने अपने ग्रन्थों में एक बार साथ में गिनाए हैं, वे भी इस मन्त्र के आगे-पीछे इन स्थलों में चार बार पाए जाते हैं। विस्तारभय से हम उनकी चर्चा यहाँ नहीं करेंगे।

अब यदि हम यह समझें कि इन पांचों स्थानों पर उपर्युक्त मन्त्र का अर्थ एक ही है, जैसा कि इस समय प्रायः समझा जाता है, तो वेदों में पुनरुक्ति दोष आ जायेगा, जिसके अनुसार किसी विषय को ग्रन्थ में पुनः पुनः कहना ग्रन्थ में दोष होना कहा गया है। निरुक्त कहता है–

"यथाकथा च विशेषोऽजामि भवति॥ (निरु० १०।१६)"

(वेद में दौहराए मन्त्रों का) किसी न किसी प्रकार से अर्थभेद होता ही है। न्यायदर्शन भी कहता है–

"अनुवादोपपत्तेश्च (वेदेषु पुनरुक्तिदोषः नास्ति) (न्याय० २।१।६१)"

अर्थात् वेदों में जो कुछ पदों/वाक्यों का दौहराना दीखता है, वह 'अनुवाद' = सार्थक श्रेणी में आता है, उस दौहराने का कोई विशेष प्रयोजन होता है। आज भी हम ऐसे ग्रन्थ को हीन-दृष्टि से देखेंगे जिसमें एक ही विषय को अनेक बार कहा गया हो, क्योंकि कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति इसको स्वीकार नहीं कर सकता।

अच्छा तो फिर इन पांचो स्थलों में भिन्न-भिन्न अर्थ अथवा कोई विशेष प्रयोजन मान लेते हैं। पर वे अर्थ/प्रयोजन हैं क्या? उनका कैसे निर्धारण किया जाए? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए महर्षि का भाष्य तो देखेंगे ही, परन्तु वह पांच में से केवल तीन मन्त्रों के लिए उपलब्ध है। निरुक्त में कुछ अन्य ही व्याख्या प्राप्त होती है। इन सब कठिनाईयों का पार पाने के लिए ऋषि और देवता का ज्ञान करना अनिवार्य हो जाता है। और जब हम इस दिशा में खोज करते हैं, तो अपेक्षानुसार पांचों स्थलों पर हमें इन दोनों में भेद प्राप्त होता है। ये भेद तालिका में संग्रहीत हैं–

संकेत	ऋषि	देवता	अन्य भेद
ऋक्० १०।१२१।१	प्राजापत्यो हिरण्यगर्भ:	क:	–
यजु० १३।४	हिरण्यगर्भ:	प्रजापति:	–
यजु० २३।१	प्रजापति:	परमेश्वर:	–
यजु० २५।१०	प्रजापित:	हिरण्यगर्भ:	–
अथर्व० ४।२।७	वेन:	आत्मा	दूसरी पंक्ति का आरम्भ:
			स दाधार पृथिवीमुत द्यां...

ये भेद बहुत ही अद्‌भुत हैं! आज तक हमने सम्भवत: इन पर ध्यान भी न दिया हो...

इससे पहले कि हम इन भेदों का अर्थ पर प्रभाव देखें, हम मन्त्र की प्रचलित व्याख्या देख लेते हैं: "(अग्रे) सृष्टि के आदि में (हिरण्यगर्भ:) सूर्यादि ज्योति–पुञ्ज जिस परमात्मा के गर्भ में हैं, वह (सम्+ अवर्तत) भली प्रकार वर्तता था (शेष दो प्रकृति और जीवात्माएं सुप्तावस्था में थीं, केवल वही अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ 'जागता' था)। (सृष्टि हो जाने पर) वह (एक:) अकेला असहाय = जिसको किसी अन्य के सहाय की आवश्यकता नहीं थी (जात:) प्रादुर्भुत हुए (भूतस्य) पदार्थ और प्राणियों का (पित:) पालन कर्ता व रक्षक (आसीत्) था। (स) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) अप्रकाशमान् पृथिवी–प्रभृति लोकों (उत) और (द्याम्) प्रकाशमान् सूर्य–प्रभृति पिण्डों को (दाधार) धारण करता है। उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मा के लिए (हविषा) उपासना रूप हवि द्वारा (विधेम) हम अपने को समर्पित करें।" परमात्मा और जीवात्मा विषयक होने से ये आध्यात्मिक अर्थ हैं जो कि महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के मन्त्र की व्याख्या के रूप में अपने अन्य ग्रन्थों में दिए हैं क्योंकि ऋग्वेद के इस भाग की महर्षि–व्याख्या उपलब्ध नहीं है।

निरुक्त में प्राय: आधिदैविक अर्थ ही ग्रहण किए गए हैं। इसलिए वहाँ पर इसी ऋग्वैदिक मन्त्र के अर्थ पर्याप्त भिन्न हैं – **"क: कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा। हिरण्यगर्भ हिरण्यमयो गर्भो, हिरण्यमयो गर्भोऽस्येति वा। गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे, गिरत्यनर्थानिति वा। यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति, गुणाश्चास्या गृह्यन्ते, गर्भो भवति। समभवदग्रे भूतस्य जात: पितरेको बभूव। स धारयति पृथिवीं च दिवं च। कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातं, विधतिर्दानकर्मा (निरु० १०।२३)** – अर्थात् 'क' का अर्थ है कमनीय, क्रमण = गति करने वाला और सुखरूप। 'हिरण्यगर्भ' का अर्थ है हिरण्यमय = चमकीला गर्भ अथवा जिसका ऐसा गर्भ हो, वह। 'गर्भ' बना है 'गृभि' धातु (पाणिनीय धातुपाठ में नहीं पढ़ी हुई) से, गृणाति = स्तुति अथवा उपदेश करने के अर्थ में; या 'गृ निगरणे (तुदा०)' से अनर्थों को निगलने वाले के अर्थ में (आगे दिए वाक्यों से ग्रहण करने के अर्थ में भी)। जब ही स्त्री (पुरुष के वीर्य के) गुणों को ग्रहण करती है, और उसके (रज के) गुणों को ग्रहण किया जाता है (कोषिका में), तब गर्भ होता है।... 'विधेम' विधति = दान करने के अर्थ– में।" इससे स्पष्ट होता है कि यास्क ने यहां हिरण्यगर्भ से भ्रूण अर्थ लिया है। श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न जी ने अपने निरुक्त–भाष्य में 'क' के प्राणवायु अर्थ बताए हैं, क्योंकि वह कमनीय

होता है, सारे शरीर में गति करता है और प्राणियों के लिए सुखकारी होता है। तब मन्त्र के अर्थ हुए – "(जीव की उत्पत्ति में) सबसे पहले जीवन-ज्योति-रूप, अथवा चेतन जीवात्मा का ज्योति जिसके गर्भ में हो, वह प्राण उत्पन्न होता है। सभी प्राणियों का वह अकेला पति = पालक व रक्षक होता है – शरीर-धारण का आधार होता है।[1] जीव में वह प्राण पृथिवी = शरीर के पार्थिव अंश और द्यौ = शरीर के तेज को धारण करता है। उस कमनीय, गतिमान्, सुखकारी प्राण को हम सात्त्विक अन्न का दान करें।"

अब अन्य उपलब्ध अर्थों को देखते हैं: यजुर्वेद १३।४ – यहाँ अर्थ प्रचलित अर्थ के समान ही है, परन्तु दो विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं: १) महर्षि ने विषय बताया है– "किं स्वरूपं ब्रह्म जनैरुपास्यमित्याह" अर्थात् 'ब्रह्म' के किस प्रकार का स्वरूप मनुष्यों के द्वारा उपास्य है, यह कहा गया है'। २) 'जात:' को महर्षि ने 'पित:' का विशेषण लेते हुए, 'जनक' अर्थ किया है।

यजुर्वेद २३।१ – यहाँ भी अर्थ प्रचलित अर्थ के अनुरूप ही है, परन्तु दो विशेषताएं पुन: ध्यान देने योग्य हैं:

१) महर्षि ने विषय लिखा है – "अथेश्वर: किं करोत्याह" अर्थात् 'परमात्मा क्या करता है, यह कहा गया है'।

२) 'जात:' को महर्षि ने पुन: 'पित:' का विशेषण लेते हुए, 'प्रादुर्भूत' अर्थ किया है।

यजुर्वेद २५।१० – यहाँ पुन: अर्थ प्रचलित अर्थ के समान ही है, और ध्यान देने योग्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

१) महर्षि ने विषय बताया है – "अथ परमात्मा कीदृशोऽस्तीत्याह" = 'परमात्मा किस प्रकार का है, यह कहा गया है'। यह यजुर्वेद १३।४ के समान है, तथापि उपासना का अर्थ यहाँ नहीं आया है।

२) 'जात:' को महर्षि ने 'भूतस्य' का विशेषण मानते हुए और षष्ठ्यर्थे प्रथमा लेते हुए, प्रादुर्भूत (जगत्) अर्थ किया है।

३) इस मन्त्र के आगे के उपर्युक्त तीन मन्त्रों 'य: प्राणतो', 'यस्येमे हिमवन्तो' और 'य आत्मदा' में सूर्य अर्थ ग्रहण किया है, जबकि अन्य स्थलों पर इन मन्त्र में भी परमात्मा अर्थ ही ग्रहण हुआ था; 'य आत्मदा' में साथ-साथ द्वितीय परमात्मा अर्थ भी ग्रहण किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि 'हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे' मन्त्र में भी सूर्य अर्थ सम्भव हो सकता है।

अथर्व० ४।२।७ – यहाँ पुन: प्रचिलत अर्थ ही दिया जाता है। सम्भव है कि 'जात:' के अर्थभेद का कुछ विशेष महत्त्व न हो, परन्तु निर्दिष्ट विषय में भेद और सूर्य अर्थ का अवश्य महत्त्व प्रतीत होता है।

अब ऋषि और देवता के भेद के अनुसार, साथ-साथ सन्दर्भ को देखते हुए, हम इन पांचों मन्त्रों के अर्थभेद को जानने का चेष्टा करते हैं। इनमें अथर्ववेद सबसे सरल प्रतीत होता है, इसलिए सबसे पहले उसे ही लेते हैं। यहां ऋषि है 'वेन:' जिसका अर्थ महर्षि ने यजु० १३।३ में 'कमनीय' किया है। देवता है 'आत्मा' जिसका अर्थ कभी परमात्मा होता है और कभी जीवात्मा। यदि हम आगे-पीछे के मन्त्र देखें तो वहाँ जलों में गर्भ-धारण की बात कही गई है। यहाँ तक कि ८वें मन्त्र में कहा गया है–

"आपो वचसं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्। तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययाः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"

अर्थात् सन्तान को जन्म देते हुए, जल पहले गर्भ को प्रेरित करते हैं (सकुचाना प्रारम्भ करते हैं)। उस उत्पन्न होते हुए का जार 'हिरण्यय' होती (=कहलाती) है। उस कमनीय देव का हवि द्वारा सेवन करें।"

१. प्राणाय नम: ... यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ अथर्व० ११।४।१॥ – में भी इसी उद्गार की ध्वनि है।

जबकि यहाँ सृष्ट्युत्पत्ति का प्रकरण भी सम्भव है, तथापि 'कमनीय (प्राण)' ऋषि और 'आत्मा (=जीवात्मा)' से यहाँ निरुक्त-वर्णित अर्थ ही अभिप्रेत हैं, ऐसा सम्यक् विश्वास से कहा जा सकता है।

ऋग्वैदिक मन्त्र का ऋषि है 'प्राजापत्यो हिरण्यगर्भ:' और देवता है 'क:'। 'प्राजापत्यो हिरण्यगर्भ:' का अर्थ है 'प्रजापति से सम्बद्ध हिरण्यगर्भ'। जबकि 'प्रजापति' शब्द लौकिक भाषा में परमेश्वर के लिए ही प्रयुक्त होता है, तथापि इसके यौगिक अर्थ 'प्रजाओं का रक्षक राजा' अथवा 'प्रजा की कामना करने वाला पुरुष' भी होते हैं। 'क:' का अर्थ 'कमनीय, गतियुक्त, सुख' हमने निरुक्त के आधार से देखा। यदि हम सन्दर्भ देखें तो, उपर्युक्त चार मन्त्रों के बाद, कुछ अन्य मन्त्र भी ऐसे आते हैं जिनके ब्रह्माण्ड अर्थ अधिक आसानी से घटते हैं, परन्तु जीव-गर्भ के अर्थ भी हो सकते हैं। फिर यह श्लेषालंकार और भी गहन हो जाता है जब इस प्रकार के वचन मिलते हैं-

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै...॥
यश्चिदापो महिना पर्यपशयद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै...॥
॥ऋ० १०।१२१।७-८॥

अर्थात् "महान् जल, गर्भ को धारण करते हुए, अग्नि (=दानयुक्त जीव) को जन्म देते हुए, सब (जगत्) को प्रकट (जीव के लिए) करते हैं। तब देवों (=इन्द्रियो) का (=में) एक प्राण वर्तता है॥ जलों का, अपने महत्त्व द्वारा, वेग को धारण करते हुए, यज्ञ (करने वाले जीव) को जन्म देते हुए जो भली प्रकार से देखता है, वह देवों में जो श्रेष्ठ देव (प्राण) है (उसे जान लेता है)।" आगे के दो प्रसिद्ध मन्त्र "मा नो हिंसीज्०" और "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो०" तो केवल जीव पर ही घटते हैं, प्रार्थना विषयक हैं, उनमें सृष्ट्युत्पत्ति का प्रकरण नहीं घटता। इस सब से प्रतीत होता है कि यहाँ 'प्राजापत्यो हिरण्यगर्भ:' का अर्थ 'प्रजा की इच्छा रखने वाले से सम्बद्ध जारयुक्त स्त्रीगर्भ' और 'क:' से 'जीवन का सुख' अभिप्रेत हैं। सो, प्रकृत मन्त्र में 'हिरण्यगर्भ' से 'प्राण' अभिप्रेत होते हुए, अर्थ हुआ तो अथर्ववेद के मन्त्र के समान, परन्तु उसका परिपेक्ष क = जीव को भोग और अपवर्ग के सुख को प्राप्त करने का उपदेश है, जो उपदेश सम्पूर्ण सूक्त में भी व्याप्त है।

श्लेषालंकार से सृष्ट्युत्पत्ति विषय भी पूर्ववत् है, परन्तु उस दशा में मन्त्र का विषय होगा 'परमात्मा के प्रयोजन को समझकर, आत्मा का जीवन में भोग और अपवर्ग के द्वारा सुख की प्राप्ति।

यजु० १३।४ - यहाँ ऋषि 'हिरण्यगर्भ:' और देवता 'प्रजापति:' हैं। पिछले मन्त्र **"ब्रह्म जदानं प्रथमं पुरस्तात्..."** और अनन्तर मन्त्र **"द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु..."** में भी हम सृष्ट्युत्पत्ति विषय पाते हैं, परन्तु यहाँ सम्पूर्ण प्रकरण में प्रयोजन है परमात्मा के उस रूप को बताना जिसको मन में धारण करके योगी उपासना करे। सो, यहाँ 'हिरण्यगर्भ' का अर्थ सृष्टि को अपने गर्भ में उत्पन्न करने वाले परमात्मा से है, और 'प्रजापित' से उस सृष्टि में जीवों के पालक परमात्मा से।

यजु० २३।१ - यहाँ ऋषि 'प्रजापति:' और देवता 'परमेश्वर:' हैं । अगले मन्त्र **"उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये..."** में जहाँ परमात्मा को पाने का चर्चा है, वहाँ उसके कार्यों की महिमा का वर्णन है। इससे, और महर्षि के वर्णन से, प्रतीत होता है कि यहाँ बल परमात्मा के सृष्टि रचने आदि कार्यों को समझाने पर है। अर्थ सृष्ट्युत्पत्ति के ही हैं, लेकिन केन्द्रबिन्दु खिसक गया है! ऋषि परमात्मा के प्रजा उत्पन्न करने के कार्य पर ध्यान आकर्षित कर रहा है और देवता उसके ईशन कार्य व सबका स्वामी होने पर।

शेष पृष्ठ १८ पर

अशुद्ध गणित से छप रहे वर्तमान में प्रकाशित सारे ही पंचांग

(आचार्य दार्शनेय लोकेश, मो.- ०१२०-४२७७१४१०)

आज से १२७ वर्ष पूर्व संवत् १९४९ में, द्वारका मठ के जगद्गुरु शंकराचार्यश्री ने स्वयं एक मठादेश जारी करके हिन्दुओं को चेताया था। मठादेश में कहा गया था कि नियण पंचांग धार्मिक रूप से ग्राह्य नहीं है क्योंकि उनसे व्रत, पर्वों के निर्धारण में गम्भीर त्रुटि हो रही है। मैंने आचार्यश्री का वह मूल आदेश पत्र, अब तक प्रकाशित, अपने लगभग सभी वैदिक पंचांगों (श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम्) में प्रकाशित किया हुआ है। आर्षायण (पंचांग प्रकाशन के लिए गठित किया गया पंजीकृत ट्रस्ट) के खाते में १२५.०० रु० भेजकर कोई भी सज्जन महानुभाव इस तिथि पत्रक की प्रति मांग सकते हैं। पंचांग में प्रकाशित ये मठादेश देख सकते हैं और उसकी गणितीय और शास्त्रीय परख सकते हैं।

सन् १९४२ में भारत सरकार ने जो कै. रि. कमेटी बिठाई थी उस कमेटी ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उस रिपोर्ट के पेज २६० पर लिखा है, निरयण पंचांगों को जारी रखने वाले पंचांगकार अगर यह समझते हैं कि वे हिन्दु जनता का धार्मिक मार्गदर्शन कर रहे हैं तो वे भ्रम में हैं। वास्तव में ऐसा करके वे सारे समाज को गुमराह कर रहे हैं और इस प्रकार उनको अधर्म की ओर ले जा रहे हैं।

भाटापाड़ा के सुप्रसिद्ध खगोलविद् डॉ. रिहमाल प्रसाद तिवारी ने सतर्क स्पष्ट किया है कि निरयण प्रथा एक कुप्रथा है। निरयण पंचांग पूरी तौर से अवैज्ञानिक और निराधार हैं। वे ऋतुओं का सही संज्ञान नहीं दे रहे हैं। सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्री अवतार कृष्ण कौल एवं श्री भोला दत्त महतोलिया ने तो निरयण पंचांगों के मिथ्यात्व के स्वीकरण में अपने पंचागों को प्रकाशित करते रहना भी बन्द कर दिया। मेरा सौभाग्य है कि इन तीनों वयोवृद्ध ज्योतिर्विदों का श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् को अपना समर्थन प्राप्त है।

कृषि प्रधान आर्यावर्त्त में वेदों का एक बहुत बड़ा विज्ञान है, ऋतु दर्शन। इसी अर्थ से संवत्सर को प्रजापति कहा गया है। **प्रजापतिर्वै संवत्सरः** संवत्सर हमें ऋतु क्रम देने के अर्थ से ही प्रजापति है। ऋतुएं हमें घड़ी में लगे सचेतक समय (अलार्म) की तरह कृषि साधने की चेतना देती है। **अन्नाद भवन्ति भूतानि** अन्न हमें जीवन और आयु देता है। मुझे अति प्रसन्नता है कि कुछ बुद्धिजीवियों की चेतना अब इधर आने लगी है कि यदि होली व दीपावली नवशस्येष्टि के त्योहार हैं तो आज दीपावली एवं होली पर नई फसल का उत्पादन क्यों नहीं दिख रहा है? वस्तुतः उनको यह बात पता नहीं है कि आज ऋतुएं फसलों का नियमन नहीं कर रही है। आज तो मनुष्य और उनके ये भ्रान्त निरयण पंचांग ऋतुओं का नियमन कर रहे हैं। इसी से दीपावली दीप अवली की तरह तो है पर नवशस्येष्टि का त्योहार नहीं रह गया है। स्तरण रहे कि अवली का एक अर्थ पहले-पहले खेत में काटा जाने वाला अन्न भी होता है। अब आप समझ सकते हैं कि मनमर्जी की ऋतुएं भला फसल का नियमन कैसे करेंगी?

मार्तण्ड पंचांग के विद्वान् सम्पादक श्री प्रियव्रत शर्मा ने इस बात को स्वीकार किया है कि हमारे वर्तमान पंचांगों की मास गणना ऋतुओं से हटती जा रही है। काशी विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर केदारदत्त जोशी की पुस्तक मुहूर्त्तमार्तण्ड की भूमिका से लिखे गये उनके वचन देखें- "....परन्तु खगोल ज्ञानशून्य आज के अनभिज्ञ पंचांगकार सारणियों पर अशुद्ध पंचांग निकाल कर अपनी अज्ञानता के अहं तो तुष्ट करने पर लगे हैं। यथा मकर राशि पर सूर्य २१/२२ दिसम्बर को ही वेध से आता स्पष्ट प्रतीत होने पर भी १४/१५ जनवरी को मकर संक्रान्ति पंचांगों में करना कहाँ तक समीचीन है?.....जब तक पंचांग शुद्धग्रह गणित से नहीं निकालेंगे तब तक फलित शास्त्र विश्वसनीय नहीं हो पायेगा। आज प्रायः सभी भारतीय पंचांग ग्रह गणित से अशुद्ध हैं। परम्परावादी सुधार भी नहीं करना चाहते यदि अन्य सुधि जन इसका प्रयास करते भी हैं तो उन्हें इलके संगठित विरोध का सामना करना पड़ता है और उनका स्वर

शेष पृष्ठ १८ पर

अन्तःकरण (चित्त) का सदुपयोग

(महात्मा चैतन्यस्वामी, सुन्दरनगर, हि०प्र०, चलभाष : ९४१८०५३०९२)

परमात्मा न्यायकारी है अतः वह हमारे कर्मों के आधार पर ही न्याय करता है।उसकी न्याय-व्यवस्था में जरा सी भी भूल-चूक होने की कोई संभावना नहीं है और न ही परमात्मा किसी की शिफारिश आदि से हमारे पाप-कर्मों को क्षमा करता है। अपने पुण्य कर्मों के आधार पर ही परमात्मा ने हमें यह मानव-शरीर प्रदान किया है। वेद में कहा गया है- **विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नष्क्षसम्॥** (यजु० ३०-४०)

परमात्मा ने हमें हमारे कर्मानुसार यह शरीर तो दिया ही मगर साथ में और क्या कुछ दिया यह भी चिन्तन करने की बात है। परमात्मा ने आत्मा को दो प्रकार के करण (उपकरण) दिए हैं। पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां ये वाह्यकरण तथा मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार (स्व-स्मृति) ये अन्तःकरण दिए हैं। अब हमारा यह दायित्व है कि इन वाह्य एवं अन्तःकरण का सदुपयोग करके अपने जीवन को भद्रता से परिपूर्ण करें। वेद हमें आदेश देता है-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
(सा० १८७४)

(देवाः) ज्ञान-ज्योति देने वाले विद्वानों! आपकी उपदेश वाणियों से हम **(कर्णेभिः)** कानों से **(भद्रं)** कल्याण व सुखकर शब्दों को ही **(शृणुयाम्)** सुनें। **(यजत्राः)** अपने संग व ज्ञानदान से हमारा त्रण करने वाले विद्वानों! **(अक्षभिः)** हम प्रभु से दी गई इन आंखों से **(भद्रम्)** शुभ को ही **(पश्येम्)** देखें। हम कभी किसी की बुराई को न देखें.... **(स्थिरैः अंगैः)** दृढ़ अंगों से तथा **(तनूभिः)** विस्तृत शक्ति वाले शरीरों से **(तुष्टुवांसः)** सदा प्रभु का स्तवन करते हुए, उस आयु को **(व्यषेमहि)** प्राप्त करें, **(यत् आयुः)** जो जीवन **(देवहितम्)** देव के उपासन के योग्य है अर्थात् जो अपने कर्त्तव्यों को करने के द्वारा प्रभु की अर्चना में बीत्ता है। अब हम अन्तःकरण का सदुपयोग करने की चर्चा करेंगे।

परम दयालु परमात्मा ने हमें अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार) के रूप में जो न्यामत दी है, उसका मूल्य आंकना असंभव सा ही है। यहाँ हम चित्त की चर्चा करेंगे। चित्त को भूत एवं भविष्य का स्मरण रखने वाला एक उपकरण समझा जा सकता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द का ज्ञान इसी से होता है। मन का संकल्प-विकल्प व्यवहार, बुद्धि का सन्देह व निर्णय जैसे भूतकाल में अनुभव किए, वर्तमान में किए जा रहे हैं और भविष्य में किए जाने वाले हैं या जिन पर लक्ष्य व ध्यान है, ये सब चित्त के अधीन हैं-

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहितमृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

इस चित्त के द्वारा ही सप्तहोताओं (२ कान, २ आँखें, २ नासिका छिद्र और मुख) का कार्य चलता है।... जो व्यक्ति अयुक्त कर्मों का बुरा फल तथा पुण्य कर्मों का श्रेष्ठ फल भूल जाता है (भूतकाल) उनका वर्तमान् नहीं बना करता है और जो भविष्य की नहीं सोचता उसका वर्तमान् भी नहीं बनता... पिछले निकृष्ट कर्मों का त्याग और पुण्यकर्मों का आचरण करके अपने वर्तमान को बनाने वाला ही सुखी है। उपयोग वर्तमान का ही करना है क्योंकि भूत चला गया और भविष्य अभी आने वाला है,

उन्हें पकड़ना कठिन है मगर वर्तमान को हम पकड़ सकते हैं... यही चित्त की सूक्ष्मता को समझने का सही ढंग है। चित्त और मन इन दोनों में इतना सूक्ष्म और अल्प भेद है कि जिसको अभेद सा मानकर दोनों को एक ही प्रायः मानते हैं। और एक के स्थान में दूसरे पद का ग्रहण भी इसी आशय से होता ही है। यह भेद ध्यान-योग का अभ्यास करते-करते जब चित्त और मन के स्वरूप का निर्मल बुद्धि द्वारा बोध होता है, तब यही यथावत् जाना जाता है।

योगदर्शन में चित्त-वृत्ति के रोकने को योग कहा है- **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥** (१-२) चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं-'चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष के प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरूद्ध बुराइयों में फंसकर उस परमात्मा से दूर हो जाना।' चित्त के तीन स्वभाव माने जाते हैं। एक- प्रख्या, दूसरा-प्रवृत्ति और तीसरा-स्थिति। प्रख्या-दृष्ट वा श्रुत विषयों का विचार, प्रवृत्ति-फिर उक्त विषयों के साथ सम्बन्ध करना। स्थिति-पश्चात् उन्हीं विषयों में स्थिति करना, संलग्न हो जाना व फंस जाना। प्रख्या अर्थात् विषय विचार सत्त्व, रज, तम गुण के संसर्ग से तीन प्रकार का है यथा-जब चित्त अधिक सत्त्वगुण से युक्त होता है तब केवल ईश्वर का चिन्तन करता है। जब वही एक चित्त अधिक तमोगुण से युक्त होता है तब अधर्म अज्ञान और विषयासक्ति का चिन्तन करता है। और जब रजोगुण में चित्त अधिक हो जाता है तब धर्म और वैराग्य का चिन्तन करता है। महर्षि व्यासजी ने चित्त की पांच अवस्थाएं बताई हैं- **क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्र निरूद्धमिति चित्तभूमयः।** इनमें से प्रथम तीन योग-बाधक हैं और शेष दो योग-साधक हैं। इनका ज्ञान भी ध्यान-योग द्वारा करना ही उचित है क्योंकि इनका बोध हुए बिना भी यमादि-समाधिपर्यन्त योगाङ्गों का भलीभान्ति सिद्ध होना कठिन है। चित्त की इन अवस्थाओं को इस प्रकार से समझ सकते हैं-

क्षिप्त-जिस अवस्था में चित्त की वृत्तियां अनेक सांसारिक विषयों में गमन करती हैं, उसको '**क्षिप्तावस्था**' कहते हैं। इस अवस्था में चित्त की वृत्ति किसी एक विषय पर स्थित नहीं रहती। अर्थात् एक विषय को छोड़ दूसरे, तीसरे, चौथे आदि अनेक विषयों को ग्रहण करती और छोड़ती रहती है।

मूढ़-यह वह अवस्था है जिसमें चित्त मूर्खवत् हो जाए। अर्थात् जब मनुष्य कृत्याकृत्य को भूलकर अचेत रहे। ऐसी अवसावधान अवस्था को '**मूढ़ावस्था**' कहते हैं। **विक्षिप्त**-जिसमें चित्त व्याकुल व व्यग्र हो जाता है, उसको '**विक्षिप्तावस्था**' कहते हैं।

एकाग्र-जब चित्त विषयान्तरों से अपनी वृत्तियों को हटाकर किसी एक विषय में सर्वथा लगा दे। जैसे उपासक योगी केवल परमात्मा के ध्यान और चिन्तन से अतिरिक्त अन्य सब विषयों से अपने मन को हटाकर प्रणव के जाप में ही लगा देता है। ऐसी ध्यानावस्थित अवस्था को '**एकाग्रावस्था**' कहते हैं।

निरुद्ध-जिसमें चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ चेष्टारहित होने पर मनुष्य को निज 'आत्म-स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त होता है। स्व-स्वरूप में आने पर '**निरुद्धावस्था**' में साधक को आत्मज्ञान के साथ-साथ परमात्मज्ञान दोनों ही प्राप्त होते हैं क्योंकि जीवात्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही उसी क्षण परमात्मा का भी यथार्थज्ञान हो जाता है।

इनमें से प्रथम चार वृत्तियों में सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का संसर्ग रहता है, परन्तु पांचवीं निरूद्धावस्था अवस्था में गुणों के केवल संस्कार-मात्र रहते हैं। इनमें क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्तावस्थाओं में योग नहीं होता। क्योंकि चित्त की वृत्तियां उन अवस्थाओं में सांसारिक विषयों में लगी रहती हैं। एकाग्रावस्था में

जो योग होता है, उसको **'सम्प्रज्ञात-समाधि'** कहते हैं और निरूद्धावस्था में जो योग होता है उसको **'असम्प्रज्ञात-समाधि'** कहते हैं।

परम दयालु परमात्मा ने हमें अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार) के रूप में जो न्यामत दी है, उसका मूल्य आंकना असंभव सा ही है। यहां हम चित्त की चर्चा करेंगे। चित्त को भूत एवं भविष्य का स्मरण रखने वाला एक उपकरण समझा जा सकता है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द का ज्ञान इसी से होता है। मन का संकल्प-विकल्प व्यवहार, बुद्धि का सन्देह व निर्णय जैसे भूतकाल में अनुभव किए, वर्तमान में किए जा रहे हैं और भविष्य में किए जाने वाले हैं या जिन पर लक्ष्य व ध्यान है, ये सब चित्त के अधीन है... योगदर्शन में (यो०द० १-३०) चित्त को विक्षिप्त करने वाले नौ विघ्न बताए गए हैं-

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति-दर्शनालब्धभूमिकत्त्वानवस्थित्तवानिचित्तविक्षेपास्ते-ऽन्तरायाः।। व्याधि-शारीरिक व मानसिक रोग, स्त्यान-चित्त की अकर्मण्यता (तमोगुण के कारण सत्य कर्मों के प्रति प्रीति न रहना), **संशय**-योगाभ्यासी को योग का फल तुरन्त तो मिलता नहीं है... अतः यह सन्देह होना कि इसका फल मिलेगा भी या नहीं... मुझसे यह कार्य हो भी सकेगा या नहीं... यह सन्देह चित्त को विक्षिप्त कर देता है..., **प्रमाद**-योग के साधनों के प्रति उपेक्षा-भाव रखना उनका विधिवत् अनुष्ठान् न करना... मात्र औपचारिकता भर के लिए करना..., **आलस्य**-सामर्थ्य होते हुए भी योग-साधनों के अनुष्ठान् तमोगुण के प्रभाव के कारण प्रवृत्त न होना..., **अविरति**-सांसारिक विषयों के प्रति रूचि बने रहना जिससे तृष्णादि दोषों के कारण वैराग्य का अभाव हो जाना व योग-साधना में प्रीति न होना..., **भ्रान्तिदर्शन**-मिथ्या-ज्ञान का होना, गुरुओं, परमात्मा, ऋषियों आप्त लोगों की बातों पर पूरी निष्ठा न होना, सुख में दुःख और दुःख में सुख की भावना, विद्या-अविद्यादि का भेद न जानना...**अलब्धभूमिकत्त्व**-समाधि की उत्कृष्ट स्थिति के लिए पर्याप्त समय लगता है मगर कुछ भी उपलब्धि न होने के कारण निराशा के भाव पैदा हो जाना..., **अनवस्थितत्त्व**-कुछ थोड़ी-बहुत उपलब्धियां होने पर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण समझकर अभ्यास छोड़ बैठना....अथवा पूर्ण सफलता न होने से योग-साधना में चित्त का न लगाना...

महर्षि दयानन्द जी ने इन्हें उपासना योग का शत्रु कहा है-'वे विघ्न नव प्रकार के हैं। (व्याधि) एक व्याधि अर्थात् धातुओं की विषमता से ज्वर आदि पीड़ा का होना, दूसरा (स्त्यान) अर्थात् सत्यकर्मों में अप्रीति, तीसरा (संशय) अर्थात् जिस पदार्थ का निश्चय किया चाहे उसका यथावत् ज्ञान न होना, चौथा (प्रमाद) अर्थात् समाधि साधनों के ग्रहण में प्रीति और उनका विचार यथावत् न होना, पांचवां (आलस्य) अर्थात् शरीर और मन में आराम की इच्छा से पुरुषार्थ छोड़ बैठना, छठा (अविरति) अर्थात् विषय-सेवा में तृष्णा का होना, सातवां (भ्रान्तिदर्शन) अर्थात् उल्टे ज्ञान का होना जैसे-जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि करना तथा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वरभाव करके पूजा करना, आठवाँ (अलब्धभूमिकत्त्व) अर्थात् सामाधि का प्राप्ति न होना और नववाँ (अनवस्थित्त्व) अर्थात् समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना, ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना योग के शत्रु हैं। '(ऋ०भा०भ०उपासना०)।

योगदर्शन (१-३१) में कहा गया है कि 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से दुःख तीन प्रकार का है। जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसके नाश के लिए प्रयत्न करते हैं... ये दुःखादि विक्षेपों के साथ उत्पन्न होते हैं अतः विक्षिप्त चित्त वाले पुरूष को ही ये होते हैं और जो एकाग्रचित्त योगी हैं उनको ये उत्पन्न नहीं होते।' उपरोक्त

त्रिविध तापों के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी लिखते (स०प्र०प्रथम समु०) कि–'त्रिताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दु:ख हैं। एक–'आध्यात्मिक' जो आत्मा–शरीर में अविद्या, राग, द्वैज़, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा–'आधिभौतिक' जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा–'आधिदैविक' अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है।' क्योंकि ये दु:ख विक्षिप्त चित्त वाले को होते हैं और चित्त को विक्षिप्त करने वाले नौ विघ्नों की चर्चा हमने ऊपर की है। इन विघ्नों के बारे में महर्षि लिखते (ऋ०भा०भू०) हैं- 'अब इनके (व्याधि आदि विघ्नों के) फल लिखते हैं (दु:खदौर्म) अर्थात् दु:ख की प्राप्ति, मन का दुष्ट होना, शरीर के अवयवों का कम्पन्न, श्वास और प्रश्वास के अत्यन्त वेग से चलने में अनेक प्रकार के क्लेशों का होना, जो कि चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं, ये सब क्लेश अशान्त चित्त वाले को प्राप्त होते हैं, शान्त चित्त वाले को नहीं।' योगदर्शन (१–३२) में इन विघ्नों को दूर करने के उपाय बताए हैं... महर्षि दयानन्द जी इन विघ्नों को दूर करने का रामबाण उपाय बताते हुए लिखते (ऋ०भा०भू०) हैं–'(तत्प्रतिषेधा०) जो केवल एक अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व है, उसी में प्रेम और सर्वदा उसी की आज्ञा पालन में पुरूषार्थ करना है, वही एक उन विघ्नों के नाश करने को वज्ररूप शस्त्र है, अन्य कोई नहीं। इसलिए सब मनुष्यों को अच्छी प्रकार प्रेम–भाव से परमेश्वर के उपासना योग में नित्य पुरूषार्थ करना चाहिए कि जिससे वे सब विघ्न दूर हो जायें।'

इसीलिए महर्षि दयानन्द जी (ऋ०भा०भू०) लिखते हैं–'इसलिए जब–जब मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब–तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली–भांति से उसमें लगा दें।' योगदर्शन में चित्त–वृत्ति के रोकने को योग कहा है–**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:॥** (१–२) चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। महर्षि इस सूत्र के भाव इस प्रकार (ऋ०भा०भू०) लिखते हैं–'चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष के प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फंसकर उस परमात्मा से दूर हो जाना।' और सत्यार्थप्रकाश (नवम् समुल्लास) में इस सूत्र को इस प्रकार विवेचित करते हैं–'मनुष्य रजोगुण तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक,शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो, पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना।' इस प्रकार चित्त की एकाग्रता से क्या उपलब्धि होगी इस सम्बन्ध में योगदर्शन में (१–३) में कहा गया है–**तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्॥** इस सूत्र के भाव महर्षिजी इस प्रकार (ऋ०भा०भू०उपा०) व्यक्त करते हैं– '(प्रश्न) जब वृत्ति बाहर के व्यवहारों से हटाके स्थिर की जाती है, तब कहां पर स्थिर होती है? इसका उत्तर यह है कि (तदा द्र०) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर को चलके कहीं स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है।'

❑❑

क्या संविधान ही सबकुछ है?

(रामनिवास 'गुणग्राहक', चलभाष : ९०७९०३९०८८)

परम्परा से प्राप्त संस्कारों और प्रगतिवादी विचारों के संघर्ष से जूझता भारत का पारिवारिक और सामाजिक ढाँचा आज चरमराने लगा है। अभिव्यक्ति की आजादी और १८ वर्ष के आयु के बाद अपने जीवन का हर निर्णय लेने की छूट देने के भयंकर दुष्परिणाम खुलकर सामने आने लगे हैं। १७ वर्ष ११ माह २५ दिन का किशोर अपने निर्णय स्वयं नहीं ले सकता। पाँच-छः दिन बाद वह अपने जीवन के सब प्रकार के निर्णय लेने योग्य मान लिया जाता है। क्या संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त शरीर विज्ञान या मनोविज्ञान के पास युवक-युवतियों का निर्णय क्षमता सम्बन्धी कोई ठोस आधार है। एक बहुत बड़ा प्रश्न कि १८ वर्ष के बाद युवक-युवति कोई गलत निर्णय लेकर किसी दुःखद् स्थिति में फँस जाएँ और परिवार के लोग उसे उसका स्वयं का निर्णय कहकर उससे मुँह फेर लें तो संविधान में इसे कैसे परिभाषित किया जाएगा? दो युवक-युवति अपने घर में किसी से भी नाममात्र कोई भी चर्चा किये बिना घर से भागकर विवाह कर लेते हैं तो हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी टी.वी. चैनलों पर जाकर संविधान की किस धारा के अन्तर्गत माता-पिता को कहते हैं कि वे उन्हें अपना लें। यौवनमद पर सवार होकर तथा संविधान की सुविधानुसार लिन इन रिलेशनशिप में रहने वाले या प्रेम विवाह करने वाले युवक-युवतियाँ छोटी-मोटी कहा-सुनी भी नहीं सम्भाल पाते। एक-दूसरे की हत्या तक कर डालते हैं, तब हम संविधान की कौन-सी धारा दिखाकर उनके माता-पिता की आँखों में आँसू ला सकते हैं? या आने वाले आँसुओं को किसी धारा से रोक सकते हैं? जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव-जीवन की समस्त परिस्थितियों को संविधान के दायरे में लाना क्या सम्भव है? अगर नहीं तो हमें कहीं न कहीं संविधान से आगे बढ़कर सोचना ही पड़ेगा।

मेरे दिल्ली प्रवास (२००९ से २०११) काल की घटना है। मेरे पास अखबार की कटिंग है। हरियाणा के किसी गाँव में दो भाई थे। उनमें से एक पत्नी सहित किसी दुर्घटना में चल बसा। उसकी इकलौती पुत्री को दूसरे भाई ने अपने परिवार में रखा, अपने बच्चों के साथ पाला। उसने जो किया वह संविधान की सभा धाराओं से ऊपर था। बालकों ने युवावस्था में प्रवेश किया तो एक ही परिवार में साथ खेल-खाकर पलने-बढ़ने वाले सगे दो भाईयों के पुत्र-पुत्री न जाने कब एक-दूसरे के प्रेमी बन गए और घर से भागकर विवाह करके दिल्ली में रहने लगे। उनका एक पुत्र भी हुआ। भाई से पति बने युवक ने एक दिन बहिन से पत्नी बनी लड़की की हत्या कर दी। घर पर फोन से सूचना देकर भाग निकला और उसने भी आत्महत्या कर ली। संविधान इस पर क्या कहेगा? और इस समस्या का क्या समाधान देगा? संविधान की इस व्यवस्था से उत्साहित १८ वर्ष से ऊपर के युवक-युवतियाँ उन्मुक्त शारीरिक सम्बन्ध बना लेते हैं, परिणामस्वरूप ६-७ या ८-९ माह के भ्रूण कभी झाड़ियों में मिलते हैं तो कभी शौचालय की कुईयों में। (देखें ६ दिस. २०१८ का सिटी भास्कर श्रीगंगानगर) युवा पीढ़ी के वयस्क होने पर जितना बल अधिकारों पर दिया जाता है, उतना ही कर्त्तव्यों पर भी दिया गया होता तो सम्भवतः देश की युवा पीढ़ी इतनी दिशाहीन न होती। निश्चित रूप से यह जानकर कि स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि आजकल के कलियुगी पुत्र बड़े होकर स्वयं पिता बनकर अपने पुत्रों के विवाह में अपने माता-पिता को आमन्त्रित नहीं करते, पिता को बारात में नहीं ले जाते। कोई बताए कि संविधान यहाँ क्या कहता है? हमें अपने मन-मस्तिष्क में यह बात मोटे अक्षरों में अंकित कर लेनी चाहिए कि संविधान मनुष्य के लिए है, मनुष्य

संविधान के लिए नहीं है। संसार के हर संविधान में मानवहित सर्वोपरि है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार संसार का हर संविधान अपना स्वरूप बदलता रहा है। हमारा संविधान विभिन्न सम्प्रदायों को धर्म मानकर उनकी कथित आस्था और विश्वासों की सुरक्षा के लिए तो वचनबद्ध है मगर उनकी धर्म, ईश्वर, लोक-परलोक और पाप-पुण्य आदि की अवधारणाओं पर सर्वथा मौन है। बकरा काटो तो ठीक मोर काटो तो अपराध।

वस्तुत: संविधान की अवधारणा है क्या? मनुष्यों के द्वारा मनुष्यों के लिए बनाई गई एक ऐसी व्यवस्था जो राजनैतिक रूप से संचालित करने के लिए तैयार की गई हो। देश-विदेश के संविधान और उन संविधानों के निर्माता-संशोधक यह तो स्वीकार करते हैं कि एक देश को चलाने के लिए कुछ नियम-कानून, विधि-विधान, सिद्धान्त-मर्यादाएँ होनी चाहिएँ। विज्ञान और तकनीक की दृष्टि से धरती का कण-कण कुरेद डालने, ब्रह्माण्ड में सौर-मण्डल और आकाशगंगाओं के परे पहुँचने की योजनाओं पर काम करने वाले इस मानव को यह सोचने के लिए कितना समय और चाहिए कि यह विश्व ब्रह्माण्ड भी किन्हीं नियमों, सिद्धान्तों और मर्यादाओं में बँधकर चल रहा है। हमारे संवैधानिक विधि-विधान प्राय: परिवर्तित होते रहते हैं; मगर यह संसार जब से बना है, तब से आज तक इसका एक भी नियम-सिद्धान्त आंशिक रूप में भी परिवर्तित नहीं हुआ है। परिवर्तन-संशोधन की आवश्यकता कर्त्ता की अज्ञानता या अपूर्णता का संकेत है। जैसे पाँचवीं कक्षा के लाखों छात्र मिलकर भी एम.ए. के प्रश्न पत्र को हल नहीं कर सकते, ठीक वैसे ही लाखों अपूर्ण मिलकर भी पूर्ण नहीं बन सकते। पूर्ण तो परमात्मा ही है, जिसके बनाये हुए इस अनन्त और असंख्य जैसे दिखने वाले विश्व-ब्रह्माण्ड के एक भी नियम, एक भी व्यवस्था बदलने-संशोधित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मनुष्य की हर रचना और उसका हर संविधान संशोधित होता रहता है, मगर ईश्वर की कोई रचना, कोई व्यवस्था और ईश्वर संविधान कभी नहीं बदलता। प्रश्न होगा कि क्या ईश्वर का संविधान भी है? हाँ-हाँ, हम कह चुके हैं कि जब देश को चलाने के लिए संविधान अनिवार्य है, तो इस विश्व को चलाने के लिए भी संविधान है। हमारा संविधान कुछ कामों को अच्छा और कुछ को बुरा बताकर अच्छा करने पर पुरस्कृत और बुरा करने पर दण्डित करता है, क्या वैसा ही पुरस्कार व दण्ड प्राकृतिक नियमों-ईश्वर के संविधान के अनुकूल-प्रतिकूल होने पर मिलता नहीं दिखता? न्याय की सबसे पहली माँग है कि पहले अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित की जानकारी सार्वजनिक करके सबके लिए सुलभ करा दो। उसके बाद जो उल्लंघन करे, उसे दण्डित करो। अच्छे-बुरे का ज्ञान दिये बिना दण्ड देना न्याय के नाम पर घोर अन्याय होगा। प्रश्न होगा कि क्या परमात्मा ने अच्छे-बुरे का, करने योग्य और न करने योग्य कर्मों का ज्ञान दिया है? उत्तर है- हाँ दिया है। सृष्टि के प्रारम्भ में ही पहली पीढ़ी के मनुष्यों को दिया है। उस संविधान का नाम है वेद।

वेद के बारे में सन्तोषजनक ज्ञान तो वेद को २-४ वर्ष तक मनोयोग से पढ़ने के बाद ही प्राप्त होता है। अभी इतना समझ लें कि जैसे देश की व्यस्था मनुष्यों पर निर्भर है, देश को चलाने के लिए संविधान मनुष्य बनाते हैं और उस संविधान का क्रियान्वयन मनुष्य ही अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार करते हैं। वैसे ही संसार की व्यवस्था मनुष्यों पर नहीं ईश्वर पर निर्भर है, संसार का संविधान भी ईश्वर ही देता है और वही अपनी शक्ति से इसका क्रियान्वयन भी करता है। चूँकि मनुष्य अल्पज्ञ-अज्ञानी है, उसकी शक्ति, सामर्थ्य भी अल्प है, इसलिए संविधान बनाने से लेकर संविधान के क्रियान्वयन तक में मनुष्य से भूलें, गलतियाँ होती रहती हैं। दूसरी ओर परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, उसके संविधान बनाने व क्रियान्वयन करने में न तो भूल सम्भव है और न गलती। इसलिए वेद में प्रार्थना है- **"संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि"** (अथर्व. १.१.४) अर्थात् हम वेदज्ञान के अनुसार चलें, उसके विरुद्ध नहीं। संविधान की बात करें तो मनुष्य द्वारा बनाये और ईश्वर द्वारा दिये

शेष पृष्ठ २१ पर

पृष्ठ १० का शेष

यजु० २५।१० – यहाँ ऋषि 'प्रजापतिः' और देवता 'हिरण्यगर्भः' हैं। इस मन्त्र से पिछले कुछ मन्त्र शरीर-रचना के विषय पर हैं। आगे के मन्त्र "यः प्राणतो निमिषतो..." और "यस्येमे हिमवन्तो..." का देवता 'ईश्वरः' है। इन दोनों मन्त्रों में महर्षि ने परमात्मा का वर्णन न लेकर, सूर्य में अर्थ घटाया है। सूर्य भी ईश्वर कहलाता है। तीसरे मन्त्र "य आत्मदा बलदा" का देवता 'परमात्मा' है, और यहाँ दोनों परमात्मा और सूर्य अर्थ घटाए गए हैं। वस्तुतः, 'हिरण्यगर्भ' सूर्य को भी कहा जाता है क्योंकि उसका गर्भ चमकीला होता है। सूर्य 'प्रजापति' = प्रजाओं का पोषक है, इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। इस अर्थ को लेते हुए, प्रकृत् मन्त्र का अर्थ बनता है – "पृथिवी आदि सौर्य ग्रहों से पहले, सूर्य उत्पन्न होता है। वह सब उत्पन्न प्राणियों का एक असहाय पालक है। वह पृथिवी आदि ग्रहों को अपने आकर्षण से धारण करता है और द्युलोक को स्थापित करता है। उस सुखकारी प्राकृतिक दिव्य-शक्ति सम्पन्न, कमनीय देव को हम हवनों द्वारा परिचरण करें, सेवें।" इस प्रकार मन्त्र में जीवन को सुखद बनाने के लिए सूर्य के महत्त्व को जानने और शरीर को पुष्ट करने के लिए उसका यज्ञ द्वारा सेवन करने के लिए आह्वाहन किया गया है। बहुत सम्भव है कि मेरे बताए उपयुक्त अर्थों में अनेकों त्रुटियाँ हों। तथापि मैंने ऊपर यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि एक ही मन्त्र के तीन सर्वथा भिन्न अर्थ पूर्णतया सम्भव हैं; और जहाँ वे समान भी हैं, उन अर्थों को कहने का अभिप्राय भिन्न है। यह भिन्नता ऋषि और देवता के भेद से इंगित की गई है। इनको देखकर और प्रकरण को समझकर, हम मन्त्र के लक्षित अर्थ तक पहुँच सकते हैं। सर्वत्र एक ही अर्थ मानने से वेद में पुनरुक्ति दोष आएगा और मन्त्र का द्वितीय, तृतीय बार कहना व्यर्थ होने लगेगा। ❑❑

पृष्ठ ११ का शेष

इनके स्वर के सामने दब जाता है.....।" आर्य-पर्व पद्धति के विद्वान् लेखक स्व. पं. भवानी प्रसाद जी ने मकर संक्रान्ति नाम से इस त्योहार पर लिखा है, "उत्तरायण" के दिवस मकर संक्रान्ति को भी अधिक महत्त्व दिया जाता है और स्मरणातीत चिरकाल से उस पर पर्व मनाया जाता है। उन्होंने लिखा है, "सूर्य की मकर राशि के संक्रान्ति से उत्तरायण और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन प्रारम्भ होता है।" सोचने की बात यह है कि अगर एक भी संक्रान्ति किसी भी महीने के २१ या २२ दिनांक में होगी तो बाकी बचे सभी ११ महिनों से ......महिनें संक्रान्ति क्या कभी १३ए १४ या १५वें दिनांक में हो सकती है? नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं और कभी भी नहीं। मकर संक्रान्ति के बाद शुक्ल पक्ष ही माघ शुक्ल होता है।

अब जब सही तौर पर संक्रान्ति को ही नहीं लिखा जायेगा तो क्या ऐसे लोग माघ शुक्ल को सही ले सकेंगे और यदि माघ शुक्ल गलत हो तो? क्या चैत्र शुक्ल या अश्विन शुक्ल आदि कोई भी चान्द्र मास सही ले सकेंगे? नहीं, कभी नहीं, और कभी भी नहीं। इसलिए जब वाल्मीकि पितृपक्ष चल रहा होता है तो आपको उसकी खबर ही नहीं हो पाती है। पितृपक्ष ही क्या दशहरा, दीपावली, होली, गुरु पूर्णिमा आदि सब त्योहार ऐसे असूचित और अमान्य रह जाते हैं, जिनकी वास्तिविक तिथियों की सूचना आपको होती ही नहीं। जब पितृ अमावस्या मनानी है आप दीपावली नहीं मनायेंगे। ना पितरों के सगे ओर ना मा लक्ष्मी के.....इसी प्रकार और भी।

वर्तमान में छप रहे, सारे के सारे पंचांग अशुद्ध हैं क्योंकि उनकी सौर मास गणना ऋतुबद्ध व क्रान्तिसिद्ध संक्रान्तियों पर आधारित नहीं है जो कि वैदिक पंचांग की पहली आवश्यकता है। उनमें नक्षत्रों का परिमाप और उनकी संख्या भी गलत लिए जा रहे हैं, ये और एक अलग बात है। आज पंचांगों की अशुद्धि के कारण हम अपने व्रत, पर्व और त्योहार लगभग २४ दिन की गलती के साथ मना रहे हैं। ये गलती प्रति ७२ ऋतु में श्रीराम नवमी मनेगी। अस्तु, मैं चेतावनी देता हूँ कि यदि हम समय पर नहीं सुधरे तो हम सुधरने लायक भी नहीं रह जायेंगे। कुछ सोचेंगे आप? कब तक? यदि हमारा परमपावनी, सनातन प्रवाही, वैदिक संस्कृति से जरा भी लगाव है तो ये सत्य आपको अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। आज नहीं, अभी, हाँ, अभी के अभी। ❑❑

शताब्दी लेखमाला

आर्यसमाज नया बांस के इतिहास की झाँकियाँ (२)

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर, मो.- ९४१७६४७१३३)

जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने संगीनों से सीना अड़ाया:- हमारे प्रेमी पाठक प्रश्न पूछ सकते हैं कि पूज्य स्वामी जी ने संगीनों की नोक से अपना सीना बे कीना (निर्वैर हृदय) अड़ाने का अद्‌भुत शौर्य अड़ाया- यह ठीक है परन्तु इस घटना का आर्यसमाज नया बांस की शताब्दी से क्या सम्बन्ध? हमारा विनम्र उत्तर सुन लीजिए कि इसी विषय पर कई वर्ष पूर्व में श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान पर्व की प्रात: आर्यसमाज नया बांस के प्रात:कालीन सत्संग में यज्ञ हवन के उपरान्त बोल रहा था तो बड़े जोश से इस घटना का भी उल्लेख किया। उन दिनों एक वृद्ध वानप्रस्थी भी ज्वालापुर से नया बांस आये हुये थे। वह नया बांस समाज के एक लम्बे समय तक सदस्य रहे। वह सन् १९१९ में उस घटना के समय भी इस समाज के एक निष्ठावान् सभासद् थे। मेरा संक्षिप्त व्याख्यान सुन कर फड़क उठे।

उन्होंने श्री अंगदसिंह जी आदि हम उपस्थित श्रोताओं से कहा, "मैं भी इस सम्बंध में कुछ बोलूँगा।" वह भाव भंगित हृदय से बोले आर्य समाज नया बांस के कई जोशीले सक्रिय सदस्य उस शोभायात्रा सम्मिलित थे। मैं भी उनमें से एक था और हम आगे-आगे के लोगों के संग स्वामी जी महाराज के ठीक पीछे-पीछे चल रहे थे। पं० इन्द्र जी भी स्वामी जी महाराज के साथ-साथ चल रहे थे। मैंने अपने नयनों के सामने अपने पूज्य स्वामी को संगीनों के आगे नंगी छाती अड़ाते और सिंह गर्जना करते देखा था। जो कुछ 'मेरे पिता' पुस्तक में पं० इन्द्र जी ने लिखा ठीक वही कुछ उस वानप्रस्थी वयोवृद्ध महात्मा ने कहा। उसका स्वयं को सौभाग्यशाली समझना स्वाभाविक ही था कि वह उस शोभायात्रा में पूज्य स्वामी जी के ठीक पीछे की टोली में था।

मैंने पूज्य पं० इन्द्र जी के कई बार दर्शन किये और उन्हें सुना भी। उस दिन नया बांस समाज के एक ऐसे वानप्रस्थी के दर्शन करके मैं भी अपने भाग्य पर इतराया कि उस ऐतिहासिक घटना के एक और साक्षी के दर्शन करने का गौरव प्राप्त हुआ। आज आर्यसमाज नया बांस की शताब्दी पर उस महात्मा के द्वारा सुनाये गये संस्मरणों की याद आ गई। आर्यसमाज नया बांस के उन पूर्वजों पर आर्यसमाज नया बांस अभिमान करने का पूरा-पूरा अधिकार रखता है जिन्होंने देश के स्वराज्य संग्राम में उस दिन भाग लिया।

नया बांस समाज उनके नाम लिखित रूप में सुरक्षित कर लेता तो यह इतिहास शास्त्र की स्मरणीय सेवा होती। हमें उस महात्मा का भी नाम भूल गया। वह दिल्ली के ही कभी निवासी थे।

लाला प्रेमचन्द जी को कुतिया से बचा लिया:- इसी आर्यसमाज के पूर्व प्रधान ला. प्रेमचन्द जी (श्री गणेश गोयल जी के पिता जी) ने गंगा तट पर जब कुटिया बनाकर रहना आरम्भ कर दिया, तब वह यदा-कदा दिल्ली अपने समाज व परिवार को मिलने आते रहते थे। पिछली आयु में आपने जी भर कर स्वाध्याय किया। उनकी कुटी पर गढ़मुक्तेश्वर गणेश जी हमें भी ले गये थे। फिर एक बार वह दिल्ली आये हुये थे। गणेश जी के पास एक कमरे में सारा दिन स्वाध्याय करते रहते थे। एक दिन जब गणेश जी घर से निकल कर कहीं गये तो लाला प्रेमचन्द जी अकस्मात् रुग्ण हो गये। न जाने हो क्या गया। परिवार के अन्य छोटे-बड़े भी उनकी खाट के पास आ गये। गरिमा जी ने झटपट डॉक्टर को बुलाने की कुछ व्यवस्था की।

परिवार वाले चिन्तित हो गये कि लाला जी बचेंगे

कि नहीं कि गणेश जी की पालतू नन्हीं कुतिया भी चारपाई के पास घर के लोगों में घुस गई। उसने न आओ देखा न ताओ झट से ला. प्रेमचन्द जी के ऊपर से छलांग मार कर चारपाई के दूसरी ओर पहुँच गई। क्षण भर में लाला प्रेमचन्द जी जो अचेत से पड़े थे, उठकर खड़े हो गये मानो कि उन्हें कुछ हुआ ही नहीं था। घर वाले जिनको अब अनिष्ट ही सूझ रहा था यह देखकर झूम उठे। डॉक्टर के आने से पहले-पहले यह चमत्कार कैसे हो गया? गणेश जी भी घर पहुँचे तो यह अनहोनी कैसे टल गई? सुनकर दंग हो गये।

लाला प्रेमचन्द जी से सब लोगों ने जो वहाँ पर उस घड़ी थे पूछा, "आप एकदम रुग्ण हो गये फिर एकदम पूर्ववत् नीरोग ठीक-ठाक कैसे हो गये?" हम तो मन ही मन में कुछ अनिष्ट की कल्पना करके व्यथित व्याकुल हो रहे थे।

तब लाला प्रेमचन्द जी ने अपने स्वाध्याय, अनुभव व चिन्तन के बल पर कहा, "मुझे लगता है कि मेरे ऊपर से छलांग लगाकर इस पार से उस पार जाकर इस टूटू नाम की कुतिया ने मेरा रोग हर लिया है। मुझे बचा लिया है।" इसे कोई चमत्कार न मान कर लालाजी ने इसकी तार्किक बौद्धिक व्याख्या करते हुये कहा, "लगता है कि इसके शरीर से निकली कुछ Rays (किरणों) ने मेरे शरीर के रोग का निवारण कर दिया। कोई और होता तो न जाने क्या अंधविश्वास फैला देता। आर्यसमाज नया बांस के एक पूर्व प्रधान ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा स्वाध्याय से कार्य-करण सिद्धान्त के अनुसार सबको बोध करवा दिया कि परमात्मा ने सब पशु पक्षी हमारे कल्याण के लिये ही बनाये हैं न कि मार-मार कर खाने के लिये। उपाध्याय जी ने कुत्ते को तो विशेष रूप से गाय घोड़े सदृश परिवार का अंग लिखा है। तब डॉक्टर ने भी आकर वही कुछ कहा जो लाला प्रेमचन्द जी ने ठीक होने पर कहा। हमने भी लाला जी तथा गरिमा जी के मुख से जो कुछ सुना यहाँ लिख दिया है। मानव मात्र को इस घटना से बहुत शिक्षा लेकर जीव मात्र की रक्षा व कल्याण का व्रत लेकर विश्व की भारी सेवा का व्रत लेना चाहिये। ला. प्रेमचन्द जी आर्यसमाजी न होते न जाने इस शिक्षाप्रद घटना का क्या गपोड़ा गन जाता। कई घटनायें सुनने में पढ़ने में छोटी सी प्रतीत होती हैं परन्तु मनुष्य की सीख व कल्याण के लिये उनका विशेष महत्त्व होता है।

आर्यसमाज के स्वर्णिम इतिहास के दो अध्यायः- आज पहली बार हम आर्यसमाज नया बांस के शताब्दी पर्व पर आर्यसमाज के स्वर्णिम इतिहास के दो अध्यायों का सार देने चले हैं। न जाने आर्यों में इतिहास बोध क्यों नहीं रहा। क्या आर्यसमाज नया बांस तथा क्या शेष आर्य जगत् इन दो अध्यायों की कभी चर्चा करते ही नहीं। इन पंक्तियों के लेखक ने अपने कुछ ग्रन्थों में इनका उल्लेख किया है।

यह कौन नहीं जनता कि पूज्य महात्मा आनन्द भिक्षु जी वानप्रस्थी एक विरक्त महात्मा थे। उनका अपने परिवार में कुछ भी लेना-देना नहीं था। आर्यसमाज नया बांस को केन्द्र बनाकर आपने देश-विदेश में वेद प्रचार की, यज्ञ-हवन की धूम मचा दी। सन् १९५३ में आपने पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की प्रेरणा से मॉरिशस में वैदिक धर्म प्रचारार्थ जाने का निश्चय किया। पूज्य महाशय कृष्ण जी ने मार्गव्यय के लिये एक चैक देकर प्रशंसनीय सहयोग किया। मॉरिशस में जा कर आपने कितना शानदार कार्य किया इसका कुछ विवरण प्रबुद्ध पाठक 'लौहपुरुष स्वामी स्वतत्रानन्द' में पढ़ सकते हैं। नया बांस आर्यसमाज ही अपने इस स्वर्णिम इतिहास को भूल गया है। हर कोई इतना तो मानेगा ही तब आर्यसमाज नया बांस के प्रभावशाली कर्णधारों ने व्यक्तिगत रूप से तथा समाज की ओर से इस यज्ञ में अच्छी आहुति दी होगी। ये लोग बिन मांगे ऐसे कार्यक्रम में सहयोग करने वाले थे और श्रद्धेय महात्मा जी धन मांगने वाले अर्थार्थी बाबा जी थे नहीं। उस काल के आर्यसमाजिक पत्र इस इतिहास के साक्षी हैं। सौभाग्य से इन पंक्तियों का यह लेखक उन में से एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी आज भी आपके मध्य विद्यमान है।

वे मरण व्रत क्या कोई साधारण तपस्या थी?:- सन् १९५७ में पंजाब में आर्यसमाज ने हिन्दी रक्षा के लिये प्रचण्ड सत्याग्रह किया। उस सत्याग्रह में तीन आर्य बलिदानी पुरुषों के मरण व्रत का स्वर्णिम इतिहास हम भूल गये। यह कृतघ्नता है। हम और क्या कहें? पुलिस जूते लेकर आर्यसमाज मन्दिर सैक्टर २२ चण्डीगढ़ (सत्याग्रह की छावनी) में घुस गई। महात्मा आनन्द भिक्षु जी महाराज तथा महात्मा बालकराम जी प्रज्ञाचक्षु ने इस अपमान के विरुद्ध बहुत लम्बे समय तक [एक मास से भी ऊपर] मरण व्रत रखकर देश को आर्यसमाज की सत्ता का बोध करवा दिया।

जालंधर जेल में भी यशपाल जी (अब ९२ वर्ष के वयोवृद्ध आर्य पुरुष) करनाल के कारागार में आर्य सत्याग्रही वीरों के साथ दुर्व्यवहार के विरुद्ध तब मरण व्रत रखकर अपनी मांगे मनवाईं। स्मरण रहे कि प्रिंसिपल यशपाल जी तब कोई २८ वर्ष के थे। वे मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। सार्वदेशिक मासिक की फाईलों में इस इतिहास की सब सामग्री संक्षेप से मिल सकती है। दैनिक प्रताप जालंधर में भी एक-एक दिन का उस सत्याग्रह का इतिहास छपता रहा। अब मुँह जबानी इतिहास बढ़ने वाले तो कई हैं। प्रामाणिक इतिहास की खोज का श्रम करने वालों को नयन खोज रहे हैं। महात्मा आनन्द भिक्षु जी महाराज का एक मास से ऊपर का यह मरण व्रत आर्यसमाज नया बांस की विलक्षण देन है अथवा नहीं?

(क्रमशः) ❑❑

पृष्ठ १७ का शेष

गये संविधान में ईश्वरीय संविधान का पालन सर्वश्रेष्ठ है। अथर्ववेद में ही आता है- **"अपक्रामन् पौरुषेयाद् गुणानो दैव्यं वचः"** (१.१०५.१) अर्थात् पुरुषों (मनुष्यों) की वाणी से आगे बढ़कर दैवीय वाणी को ग्रहण करो। सरल शब्दों में कहें तो मनुष्यों के ज्ञान से आगे बढ़ो और दैवीय ज्ञान, ईश्वर की वाणी, ईश्वर के ज्ञान को ग्रहण करो।

हमारी सम्पूर्ण ऋषि परम्परा में वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना गया है, साथ ही बड़े तर्कपूर्ण ढंग से यह सिद्ध भी किया गया है कि वेद ही एकमात्र ईश्वरीय ज्ञान है। वेद में सम्पूर्ण सत्य विद्याएँ बीजरूप में हैं, वेद पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। भाषा शास्त्र का मूल वेद ही है और सृष्टि के प्रारम्भ में ही परमेश्वर द्वारा दिया गया होने के कारण आज भी सारा विश्व वेद को प्राचीनतम ग्रन्थ मानता है। शब्दों के निर्वचनकर्त्ता महर्षि यास्क लिखते हैं-**"पुरुष विद्या अनित्यत्त्वात् कर्म सम्पतिर्मन्त्रो वेदे"** (निरु. १/२/२) अर्थात् मनुष्य का ज्ञान अनित्य होने से, घटता-बढ़ता रहने से वेदमन्त्रों द्वारा नित्य कर्मों का निरूपण किया गया है। भारत वेदभूमि है। हमारे पास संसार बनाने वाले परमेश्वर द्वारा दिया गया सृष्टि का अटल, अपरिवर्तनीय संविधान है तो हम सैकड़ों बार संशोधित हो चुके और आगे भी होते रहने वाले मानव-निर्मित संविधान की परिधि में रहकर सहज, सरस और स्वाभाविक जीवन नहीं जी सकते। हमारे सांस्कृतिक जीवन मूल्यों और शिष्टाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों से लेकर धार्मिक विश्वासो तक में ईश्वरीय संविधान वेद के संस्कार रचे-बसे हैं। जहाँ-२ हमारा मानवीय संविधान ईश्वरीय संविधान की अवहेलना करता है तो हमारे हृदय में ठीक वैसा ही होता है जैसा कि एक प्रान्त द्वारा अपने राष्ट्रीय संविधान की भावना और मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध जाकर कुछ नियम-कानून बनाने पर राष्ट्रवादी पुरुषों के हृदय में होता है। उन्हें लगता है कि ऐसा करना राष्ट्र की एकता, अखण्डता और उसके अस्तित्त्व को चुनौती देने वाला है तो निश्चित रूप से ईश्वरीय संविधान के विरुद्ध मानवीय संविधान का हर एक कथन सृष्टि-संचालन के सिद्धान्तों, प्रकृति के नियमों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्त्व के लिए चुनौती देने वाला है। करोड़ों वर्षों से सम्पूर्ण मानव-जाति के साथ प्राणीमात्र के लिए सतत् जीवन-सामग्री देने वाली धरती और उसके जीवनदायक पर्यावरण को हानि पहुँचाने, नष्ट-भ्रष्ट करने वाली मानवीय व्यवस्था अर्थात् संविधान की परिधि में रहकर मानवता अपने अस्तित्त्व को कब तक बचाये रख पायेगी? ❑❑

दलितोद्धार की आड़ में (२)

राजेशार्यः आट्टा पानीपत-१३२१२२ (मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! 'विश्व धरातल पर दलित साहित्य' पुस्तक में भारतीय दलित साहित्य अकादमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सोहनलाल सुमनाक्षर ने प्रारम्भ से अन्त तक मनुस्मृति के प्रति घृणा व्यक्त की है, उसे त्याज्य घोषित किया है। वे लिखते हैं कि मनुस्मृति और हिन्दू धर्मग्रन्थों ने ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के चतुर्थ वर्ण - शूद्रों के खिलाफ जो विषवमन किया उससे सारा समाज तो विषाक्त हुआ ही, देश को भी हजारों वर्षों तक गुलामी का बोझ ढ़ोना पड़ा।

समीक्षा- मनुस्मृति अवश्य त्याज्य होती यदि उसमें केवल जन्मना शूद्र को बिना अपराध के ही प्रताड़ित करने का विधान होता पर क्योंकि वहाँ कर्मणा व्यवस्था है जो वेदानुकूल होने के कारण विपरीत विधान को मिलावटी घोषित कर रही है और यह मिलावट स्वार्थी, धूर्त व दुष्ट स्वभाव के लोगों द्वारा की गई थी। इसे व्यवहार में लाने वाले भी ऐसे ही रहे होंगे। अन्यथा मनुस्मृति का विशुद्ध रूप महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में देखा जा सकता है। आर्यसमाज के विद्वान् पं० तुलसीराम स्वामी, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, डॉ० सुरेन्द्र कुमार आदि सम्पूर्ण मनुस्मृति का विशुद्ध रूप निकालने के लिए प्रारम्भ से ही प्रयासरत रहे हैं। सम्भवत: डॉ० अम्बेडकर ने इन वैदिक विद्वानों का मनुस्मृति भाष्य देखा होगा तभी तो उन्होंने कहीं-कहीं मनु का समर्थन किया है पर छुआछूत के समर्थन के लिए सम्पूर्ण मनुस्मृति को आगे रखने वालों के अत्याचार के कारण उन्होंने मनुस्मृति का विरोध किया। निश्चित रूप से शूद्रों को उनके अधिकारों से वंचित करने वाले लोग मानवता के शत्रु थे और उनके पापों का फल देश को भोगना पड़ा। पर सत्य यह है कि गुलामी के लगभग ८०० वर्ष (११९२-१९४७ ई०) में भी **सम्पूर्ण भारत कभी गुलाम नहीं रहा।** 'हजारों वर्ष की गुलामी' यह झूठा प्रचार है। यहाँ लेखक ने माना है कि शूद्र भी वेदों को मानने वाले आर्य ही थे। फिर अन्यत्र उन्हें आर्यों से भिन्न भारत के 'मूल निवासी', द्रविड़, दलित आदि कैसे लिखा?

आगे लिखा है- "वेद मन्त्र सुनने के अपराध में कितने ही शूद्रों के कानों में गरम पिघला शीशा डालकर उन्हें बहरा बना दिया गया, कितने ही शूद्रों को वेद मन्त्र गुनगुनाने के अपराध में उनके मुंह में आठ उंगल लम्बी लोहे की गर्म लाल छड़ डालकर गूंगा बना दिया। थोड़ी सी हुक्म अदुली करने पर उनके हाथ-पाँव काटकर अपंग बना दिया गया। इस देश के जो मूल निवासी थे, मालिक थे, उनका धन, धरती और अधिकार छीनकर उन्हें दास, दस्यु, दैत्य, राक्षस और असुर बना दिया गया। झूठन खाना, उतरन पहनना और पुआल बिछाकर नीचे धरती पर सोना उनके लिए विधान बना दिया गया....।"

समीक्षा- यहाँ लेखक ने शूद्रों को मूल निवासी और आर्यों को आक्रमणकारी माना है अर्थात् शूद्र आर्यों से अलग थे। यदि ऐसा था जो शूद्रों ने आर्यों के वेद पढ़ने सुनने और गुनगुनाने का हठ क्यों किया, जबकि आक्रान्ता आर्यों ने उन्हें पढ़ने की मनाही कर दी थी? **जब शूद्रों ने वेद पढ़े ही नहीं तो उन्हें गुनगुना कैसे सकते थे?** हो सकता है किसी अत्याचारी ने किसी शूद्र को इस अपराध में गूंगा, बहरा या लंगड़ा बनाया हो, क्योंकि कुछ ग्रन्थों में इसका विधान है, पर इसका पालन किया गया हो ऐसा लिखित इतिहास नहीं मिलता। वैसे भी शूद्रों ने

अपने आक्रान्ताओं के ग्रन्थों को पढ़ने, सुनने व गुनगुनाने और इस अपराध की सजा पाने की परम्परा को हजारों वर्षों तक चलाया हो, यह विश्वसनीय नहीं लगता। क्योंकि उन्हें पढ़ाने वाले तो ब्राह्मण ही थे, जब वे शुरू में ही किसी को नहीं पढ़ाएंगे, तो आगे परम्परा कैसे चलती? हाँ, यदि लेखक शूद्रों को आर्यों का अंग (चौथा वर्ण) मानता, तब तो वह आर्यों (ब्राह्मणों) को शूद्र का वेदाधिकार छीनने का दोष दे सकता था पर आर्यों को विदेशी आक्रान्ता मानकर उसने स्वयं को निराधार बना लिया।

सोचिये, क्या ऐसा सम्भव है कि कुछ हजार लोग आक्रमणकारी बनकर किसी देश में जाएं और वहाँ के सभी मूल निवासियों को एकदम से नष्ट कर अपना गुलाम बना लें? और वे गुलाम बनने वाले (जो देश को सोने की चिड़िया बना सकते थे) अपनी संस्कृति और इतिहास को भूलकर आक्रान्ता के ग्रन्थों से प्रेम करने लग जाएँ, जबकि आक्रान्ता ने उनका पढ़ने का अधिकार भी छीन लिया हो! वैसे भारत लगभग एक हजार वर्ष तक नये-नये शत्रुओं (यूनानी, शक, हूण, मुस्लिम) से टकराता रहा और लगभग आठ सौ वर्ष (मुस्लिम व अंग्रेजों का) गुलाम रहा। फिर भी हमने अपनी संस्कृति को मिटने नहीं दिया। जबकि उन आक्रान्ताओं के समय हमारी आपस की फूट भी थी और उनके द्वारा अपनी शिक्षा देने की व्यवस्था भी की गई थी। फिर कैसे मान लें कि आर्यों ने १५०० ई०पू० भारत के द्रविड़ों का समस्त उत्तर भारत से नामों निशान मिटा दिया और दक्षिण में भाग कर जाने वालों को भी यह पता नहीं रहा कि आर्यों ने उन्हें नष्ट किया था। फिर भी वे आर्यों के ग्रन्थ पढ़ते रहे। यही नहीं, आर्यों को भी अपने मूल देश की याद नहीं आई, उन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में उसका संकेत भी नहीं किया। पर हजारों वर्षों बाद कुछ विदेशियों ने बिना किसी ठोस प्रमाण के आर्य-द्रविड़ को उनकी जन्मभूमि याद दिलाई। अपने मूल नाम से भी कटे हुए हम उनके प्रति कृतज्ञता से भर गये और उनका धन्यवाद कर आपस में लड़ने लगे। आश्चर्य तो तब हुआ जब जिन्हें विदेशियों ने भी द्रविड़ नहीं कहा, उत्तर भारत के वे दलित भी स्वयं घोषित द्रविड़ बनकर वर्तमान के आर्यों (हिन्दुओं) से वैरभाव रखने लगे। उसी के परिणामस्वरूप ये लोग रामराज्य व रामायण की घटना को तो काल्पनिक मानते हैं पर मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में लिखित (केवल) शूद्र के साथ दुर्व्यवहार को धरातल की घटना मानते हैं।

हम मानते हैं कि देश में ऐसा भी समय आया जब शूद्रों को अछूत मानकर दुर्व्यवहार किया गया, पर दलितों का झण्डा उठाने वालों को यह भी तो मानना चाहिए कि हजारों-लाखों वर्षों तक देश में समता भरा समृद्धि का राज्य रहा है। आर्यों को वैदिक काल से ही बर्बर, निर्दयी व अत्याचारी नहीं माना जा सकता। सम्भवत: बौद्धों के उत्कर्ष काल में जब बहुत से शूद्र बौद्ध बन गये, तो उनके प्रति घृणा से भरे ब्राह्मणों ने नई-नई स्मृतियाँ प्राचीन ऋषियों के नाम से बनाईं और मनु आदि प्रचीन स्मृतियों व रामायण, महाभारत में भी मिलावट की।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस अन्धेरगर्दी में शूद्रों की बात तो दूर तथाकथित उच्च जाति के अभिमानी लोगों ने अपनी स्त्रियों को भी अधिकार से वंचित रखा था। जो महिलाएँ कभी वेदमन्त्रों की ऋषिकाएँ होती थीं, ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ करती थीं, शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनती थीं। फिर उसे वेद पढ़ना तो दूर सुनने से भी वंचित कर दिया। विधवा होने पर पुनर्विवाह की अनुमति तो दी ही नहीं, उससे जीवन का अधिकार भी छीन लिया, उसे जीवित ही पति की लाश के साथ जलाया जाने लगा। सम्भव है कि यह कुप्रथा कभी भावनावश शुरू हुई होगी, फिर धर्म बना दी गई और बाद में जबरदस्ती चिता में धकेली जाने

लगी। विरोध होने लगा तो महाभारत में माद्री को सती बनाने के लिए श्लोक जोड़े गये। जबकि इससे पूर्व कोई स्त्री विधवा होने पर सती नहीं हुई। वास्तव में राजा पाण्डु की मृत्यु का कारण स्वयं को मानती हुई माद्री आत्म-ग्लानि से भर गई थी और उसी सदमे में उसकी मृत्यु हुई थी। हस्तिनापुर (वन में से) उन दोनों के शव लाये गये और उन्हें स्नान के बाद सुसज्जित कर गंगा किनारे ले जाकर अंतिम संस्कार किया गया था। यदि कोई माद्री को सती हुई भी माने, तो भी यह स्पष्ट है कि आर्यों में यह कुप्रथा प्रारम्भ से नहीं थी। इसी प्रकार जातिप्रथा, छुआछूत, शूद्रों पर अत्याचार आर्यों की प्राचीन परम्परा में नहीं था। न ही उन्होंने शूद्रों को असुर, राक्षस, दस्यु, अनार्य आदि कहा। यह लेखक की अपनी कल्पना है। जूठन खाना, उतरन पहनना आदि बातें शायद किसी समय की अति नीच कर्म करने वाले द्विज प्रायश्चिती या चाण्डाल के साथ चलती हों, पर सभी शूद्रों के साथ ऐसा होता हो, इसका कोई लिखित इतिहास नहीं है। वैसे भी मनुस्मृति (२-५६) में किसी के जूठे भोजन को लेने-देने की मनाही की है- **नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।** हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी विषय में सभी स्मृतियाँ एक मत नहीं हैं और एक पुस्तक में भी परस्पर विरोध है। अतः लिखा हुआ अक्षरशः पालन किया गया होगा, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि आज भी डॉ० अम्बेडकर के भक्त उनकी २८ प्रतिज्ञाओं में से हिंसा न करना, शराब न पीना, मांस न खाना आदि बहुतों का पालन नहीं करते, फिर भी 'जय भीम' बोलते हैं।

आगे लिखा है- "उच्च वर्ण और जाति में पैदा होने वाले लेखक व साहित्यकारों ने भी जाति से निकाले जाने के डर से अछूतों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई। पेड़ पौधों पर लिखते रहे, झूठे किस्से कहानियाँ घड़ते रहे, पर अपने समाज के अपने बीच के इन उत्पीड़ित, शोषित, अपमानित लोगों की सच्चाई पर लिखने का साहस नहीं किया।" (पृ०४)

समीक्षा- यदि उच्च वर्ण के लोगों को लेखक आर्य व विदेशी मानता है तो उनके द्वारा अछूतों के विषय में न लिखने का आरोप कैसा? पर यह भी सत्य है कि आर्य समाज के विद्वानों ने अछूतों के विषय में लिखा ही नहीं अपितु लिखने योग्य किया भी है और उन्हें भी लिखने योग्य (विद्वान्) बनाया है। आर्य समाज से प्रभावित मुंशी प्रेमचन्द जैसे साहित्यकारों ने दलितों की दुर्दशा पर खूब लिखा है। लेखक ने उन सबकी इसलिए उपेक्षा की क्योंकि वे साहित्यकार दलित नहीं थे और उन्होंने लेखक की भावना के अनुरूप मनुवाद का नाम लेकर समाज में घृणा व विद्वेष फैलाने वाला साहित्य नहीं लिखा। लेखक ने ९० पृष्ठों की पुस्तक में लगभग पचास बार 'मनुस्मृति' की 'जालिम न्याय प्रणाली' शब्द को जपा है। उसके दलित साहित्य का उद्देश्य मनु की आड़ लेकर हिन्दुत्त्व (पुनर्जन्म, भाग्य, भगवान्, धर्म, कर्म आदि) का विरोध करना है। इसीलिए उसने इन सबकी वास्तविक व्याख्या करने वाले आर्य समाज की भी अनदेखी की है।

आज देश में डॉ० अम्बेडकर द्वारा निर्मित व लगभग एक सौ बार संशोधनों वाला संविधान चलता है। अतः देश में कहीं भी जातीय भेदभाव शासन द्वारा नहीं किया जा सकता। इस परिवर्तन का कारण शिक्षा का प्रचार होना भी है। अंग्रेजों व मुसलमानों ने मनु की न्याय प्रणाली को कब महत्त्व दिया था? फिर उससे भयभीत होने या उसका विरोध करने की क्या आवश्यकता है, माना कि मनुस्मृति में मिलावट की गई, बहुत सी बातें अव्यावहारिक व त्याज्य हैं, पर उसमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास व जीवन व्यवहार के अच्छे-अच्छे नियम भी तो हैं। यदि समाज में उनका पालन होता तो बाल विवाह,

सती प्रथा, चोरी, बलात्कार व भ्रष्टाचार न होता।

यदि जाति प्रथा मनुस्मृति की देन है तो तथाकथित शूद्रों ने उसे स्वीकार क्यों किया? यदि डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्व हिन्दू राजाओं के दबाव से माना था तो मुस्लिम शासक या अंग्रेजों के समय में उसे त्याग देना चाहिए था अथवा डॉ० अम्बेडकर का संविधान लागू होने के बाद ही दलितों की जाति-प्रजाति के परस्पर भेदभाव त्यागकर सभी परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध करते। कम से कम दलितों का तो एक ही वर्ग बन जाता। यदि इससे आगे हिम्मत दिखाते तो 'आरक्षण' का मोह छोड़कर तथाकथित उच्च जाति के लोगों के साथ समानता करते। यदि तब असमर्थ थे तो अब सत्तर साल बाद भी ऐसा किया जा सकता है। **दलित बनने का लाभ भी लेना और ब्राह्मण के समान सम्मान पाने का हठ भी करना, यह कहाँ का न्याय है? महात्मा बुद्ध, गुरु रविदास व डॉ० अम्बेडकर की मूर्तियों की पूजा करके भी हम मूर्ति पूजा के विरुद्ध हैं, मांसाहारी होकर भी हम अहिंसा के पुजारी (बुद्ध के शिष्य) हैं, यह अच्छा दर्शन है।**

'दलित' शब्द की परिभाषा देते हुए लेखक ने लिखा है- 'दलित शब्द केवल कथाकथित शूद्र हरिजन या गुलामों से जोड़ना न केवल इस शब्द के साथ बलात्कार है बल्कि इन वर्गों के लोगों के साथ भी अन्याय है। ....दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो, उत्पीड़न किया गया हो। उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं।'

समीक्षा- हम इस परिभाषा से सहमत हैं। दलित किसी भी वर्ग से सम्बन्धित हो सकता है पर लेखक ने शूद्र को अवश्य दलित माना है। यहाँ लेखक जन्मना वर्ण व्यवस्था का समर्थन कर रहा है। जिसका कभी दलन नहीं हुआ और जो आर्थिक रूप से भी सम्पन्न है, उसे स्वयं को दलित कहलाने का अधिकार नहीं है। डॉ० अम्बेडकर दलित थे, पर बाबू जगजीवन राम दलित नहीं थे व उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य की कई बार मुख्यमंत्री रही अपार सम्पत्ति की मालकिन सुश्री मायावती दलित नहीं हैं और बहुत से अम्बेडकरवादी भी दलित नहीं हैं। यदि वे स्वयं को दलित मानते हैं तो यह जन्मना वर्णव्यवस्था का समर्थन होगा, फिर किस आधार पर वे मनुस्मृति का विरोध कर रहे हैं? आर्य समाज की शरण में आते तो पं० सुदर्शन देव आचार्य की तरह उन्हें वेदों का विद्वान् बना दिया जाता या स्वामी बेधड़क की तरह पूज्य संन्यासी बना दिया जाता।

लेखक ने जिन रावण, बाली, कंस, जरासंध आदि अत्याचारियों को दलित माना है, वे उपरोक्त परिभाषा पर खरे नहीं उतरते और जिन पाण्डवों, सुग्रीव व राम आदि को अत्याचारी लिखा है, वे दलित हैं। क्योंकि उनका स्वत्त्व छीनकर उन्हें निर्वासित व पीड़ित किया गया था। यह इतिहासों में लिखा हुआ है और जो कहीं नहीं लिखा, दलित साहित्य के नाम पर उसकी निराधार कल्पना की जा रही है।

इसी तरह हड़प्पा, मोहनजोदड़ो को दलित (द्रविड़) सभ्यता मानकर लेखक ने लिखा है- "(आर्यों ने दलितों की) उन सम्प्रदायों के आकर्षण में इस सम्भ्यता के सृजनकर्त्ताओं को उजाड़ा, पराजित किया, उनकी संस्कृति, धर्म, साहित्य पर कब्जा किया, अपनाया और उन पर मनुस्मृति के नाम पर अपने सामाजिक बन्धन थोपकर उन्हें गुलाम बना दिया। शिक्षा ग्रहण करने, धन अर्जित करने और दूसरों से समानता करने के अधिकार पर सदैव के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया।" (पृ० १०)

समीक्षा- ऐसा लेखक ने कई बार लिखा है कि ताकि बार-बार बोला गया झूठ भी सत्य लगने लगे। हमारी मूर्खता व धूर्तता पर आज अंग्रेज हँस रहे होंगे। क्योंकि उनका षड्यन्त्र सफल हो रहा है। दक्षिण वाले द्रविड़ तो समस्त उत्तर भारत वालों को आर्य

ही मानते हैं। स्वयं को द्रविड़ घोषित कर हिन्दुओं (आर्यो) से घृणा करने वालों को पहले दक्षिण वाले द्रविड़ों से पूछ तो लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि ये कहीं के न रहें। तथाकथित सन्त रामपाल दास अपने भक्तों में यह प्रचार कर रहा था कि नैस्ट्राडमस (फ्रांस) ने भारत के जिस महान् उद्धारक की भविष्यवाणी की है, वह मैं ही हूँ। भारत का स्वयं घोषित उद्धारक अब देशद्रोह के अपराध में जेल में पड़ा है। शक्ल व रंग रूप के आधार पर भारत के लोगों को आर्य (आक्रान्ता) व द्रविड़ (आक्रान्त) में बाँटने वाले को मोर्टिमर व्हीलर के प्रचार का प्रभाव लेखक पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। व्हीलर यद्यपि हड़प्पा की द्रविड़ सभ्यता के विनाश के लिए आर्यो के आक्रमणों को दोषी मानते थे पर वे स्वयं भी निर्णय नहीं कर पाये थे कि आर्य और द्रविड़ कैसे होते हैं? वे उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय में पुरातत्त्व विभाग के प्रोफेसर श्रीधर वाकणकर से भलीभांति परिचित थे। वाकणकर गोरे रंग के थे व उनकी नाक भी बांकदार थी। एक दिन वाकरणकर ने व्हीलर से पूछा- **"अच्छा बताइए, मुझे आप द्रविड़ मानते हैं या आर्य?" व्हीलर ने दृढ़तापूर्वक कहा- "आप तो निश्चित ही आर्य हैं।" तब वाकरणकर जी बोले-"आपने जो उत्तर मुझे दिया है, उसी से मैं जान गया हूँ कि आपके आर्य वंश सिद्धान्त तथा आर्य द्रविड़ द्वैत में जरा भी दम नहीं है। मेरे पास मेरी २३ पीढ़ियों का इतिहास है। बिल्कुल प्रारंभ से हम लोग द्रविड़ माने जाते हैं। आपका 'आर्य वंश सिद्धान्त' पूर्णतः निराधार है।"** व्हीलर ने निरुत्तर होकर मौन साध लिया पर कुछ चालाक किस्म के स्वार्थी लोग इस दुष्प्रचार को आगे बढ़ाते रहे, जबकि डॉ० अम्बेडकर ने भी लिखा है- "यह धारणा गलत है कि आर्य आक्रमणकारियों ने शूद्रों को जीता। आर्यो के बाहर से आने और यहाँ के मूल निवासियों को जीतने की कहानी के समर्थन में कोई प्रमाण मौजूद नहीं है। भारत ही आर्यों का मूल निवास स्थान था।" (राइटिंग एंड स्पीचिज, खण्ड ३, पृष्ठ ४२०)

जबकि तथाकथित अम्बेडकरवादियों का तो पूरा हवाई महल ही इस झूठ पर टिका है। मुस्लिम व वामपंथी लोग इनसे 'जय भीम' के नारे लगवाकर वास्तव में अपना एजेंडा (हिन्दुत्त्व का विरोध) चलवा रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने तो यह भी लिखा है- "वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों में शूद्र चौथा वर्ण है। यदि समाज केवल चार वर्णो में विभक्त मात्र रहता तो चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में कोई आपत्ति न होती।" (शूद्रों की खोज, प्राक्कथन पृ० १)

"शूद्र आर्य समुदाय के अभिन्न, जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे। यह बात यजुर्वेद में उल्लिखित एक स्तुति से पुष्ट होती है।" वही खंड ७, पृ० ३२२)

"मैं मानता हूँ कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है।" (खं०१, ११९)

"धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है।" (शूद्रों की खोज, पृ० ४२)

"केवल यही बात नहीं थी कि शूद्र वेदों का अध्ययन कर सकते थे। कुछ ऐसे शूद्र भी थे, जिन्हें ऋषि पद प्राप्त था और जिन्होंने वेदमन्त्रों की रचना की। कवष एलूष नामक ऋषि की कथा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वह एक ऋषि था और ऋग्वेद के दसवें मण्डल में उसके रचे अनेक मन्त्र हैं।" (खं० ७, पृ० ३२४)

" वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाए जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो।" (खंड १, पृ० ११९)

"चोरी करने पर शूद्र को आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा और क्षत्रिय को बत्तीस गुणा पाप होता है। ब्राह्मण को चौंसठ गुणा या एक सौ गुणा या एक सौ अट्ठाईस गुणा तक, इसमें से प्रत्येक को अपराध की प्रकृति की (अधिक) जानकारी होती है। (मनु० ८-३३७-३३८)।" (खण्ड ७, पृ० १६३)

"जिस प्रकार कोई शूद्र ब्राह्मणत्त्व को और कोई ब्राह्मण शूद्रत्त्व को प्राप्त होता है, उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रियत्त्व और वैश्यत्त्व को प्राप्त होता है (मनुस्मृति १०-६५)।" (खण्ड १३, पृ० ८५)

"प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु आदरसूचक संज्ञा थी।.....लगभग चौथी शताब्दी में नारद स्मृति के लेखक को मनुस्मृति के लेखक का नाम ज्ञात था। नारद के अनुसार 'सुमति भार्गव' नाम के एक व्यक्ति थे जिन्होंने मनुस्मृति की रचना की।..... (अंबेडकर वाङ्मय, भाग ७, पृ० १५१)

ऐसे और भी प्रसंग वैदिक विद्वान् डॉ० सुरेन्द्र कुमार जी ने लिखे हैं जिन्हें तथाकथित अम्बेडकरवादी भूलकर भी नहीं दिखाते। यह सत्य है कि डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति का विरोध किया, उसे जलाया भी, पर इन प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि उनकी अन्तरात्मा भी सत्य को जानती थी कि मनुस्मृति में सब कुछ गलत नहीं है। क्योंकि डॉ० साहब मनुस्मृति के अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से वहाँ तक पहुँचे थे, अत: वे मनुस्मृति की रचना १८४ ई० पू० में 'सुमति भार्गव' द्वारा की गई मानते थे। यदि वे संस्कृत पढ़ जाते तो सम्भव है वे इसका लेखक स्वायम्भुव मनु (बहुत प्राचीन) को मानते और सुमति भार्गव को इसमें मिलावट करने वाला मानते।

वास्तव में मनु द्वारा दी गई शूद्र की परिभाषा भी आज की दलित और पिछड़ी जातियों पर लागू नहीं होती। जिसका ब्रह्मजन्म, विद्याजन्म रूप दूसरा जन्म होता है, वे 'द्विजाति' ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं। जिसका ब्रह्म जन्म नहीं होता वह -एक जाति' रहने वाला शूद्र है। जो जानबूझकर, मन्दबुद्धि होने के कारण अथवा अयोग्य होने कारण विद्याध्ययन और उच्च तीन द्विज वर्णों में से किसी भीवर्ण को शिक्षा-दीक्षा नहीं प्राप्त करता, वह अशिक्षित व्यक्ति 'एक जाति' 'एक जन्म वाला' अर्थात् शूद्र कहलाता है। इसके अतिरिक्त उच्च वर्णों में दीक्षित होकर जो निर्धारित कर्मों को नहीं करता, वह भी शूद्र हो जाता है। जैसे

त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥
(मनु० १०-९२) ब्राह्मण दूध बेचकर तीन दिन में शूद्र बनता है।

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्त्वं च स गच्छति॥
(मनु० ११-९७)

जिसका शरीरस्थ वेदज्ञान एक बार नशे में डूब गया हो, उसका ब्राह्मणत्त्व दूर हो जाता है और वह शूद्र हो जाता है। वेद न पढ़कर अन्यत्र श्रम करने वाला द्विज पुत्र-पौत्रों सहित शूद्र हो जाता है। (मनु० २-१६८)।

बताइये लेखक महोदय! अब आप कैसे कहोगे कि आर्यों ने द्रविड़ों-दलितों-शूद्रों पर मनुस्मृति के नियम थोपे थे?

❑❑

भूल सुधार

(राजेशार्यः आट्टा, मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रबुद्ध पाठकवृन्द! पिछले अंक में पृष्ठ सं.-२६ के अन्तिम पैरे की तीसरी पंक्ति में 'हम' की जगह भूल से 'वे' छप गया था। कृपया, इस वाक्य को इस तरह पढ़ा जाये - हम यह भी मानते हैं.......।

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१/२०२०
भार- ४० ग्राम

जनवरी 2020

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा
के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30¸8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में..........................
ग्राम..........................
डा0..........................
जिला..........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।